* ॐ श्रीपरमात्मने नमः *

कल्याण

मूल्य १० रुपये
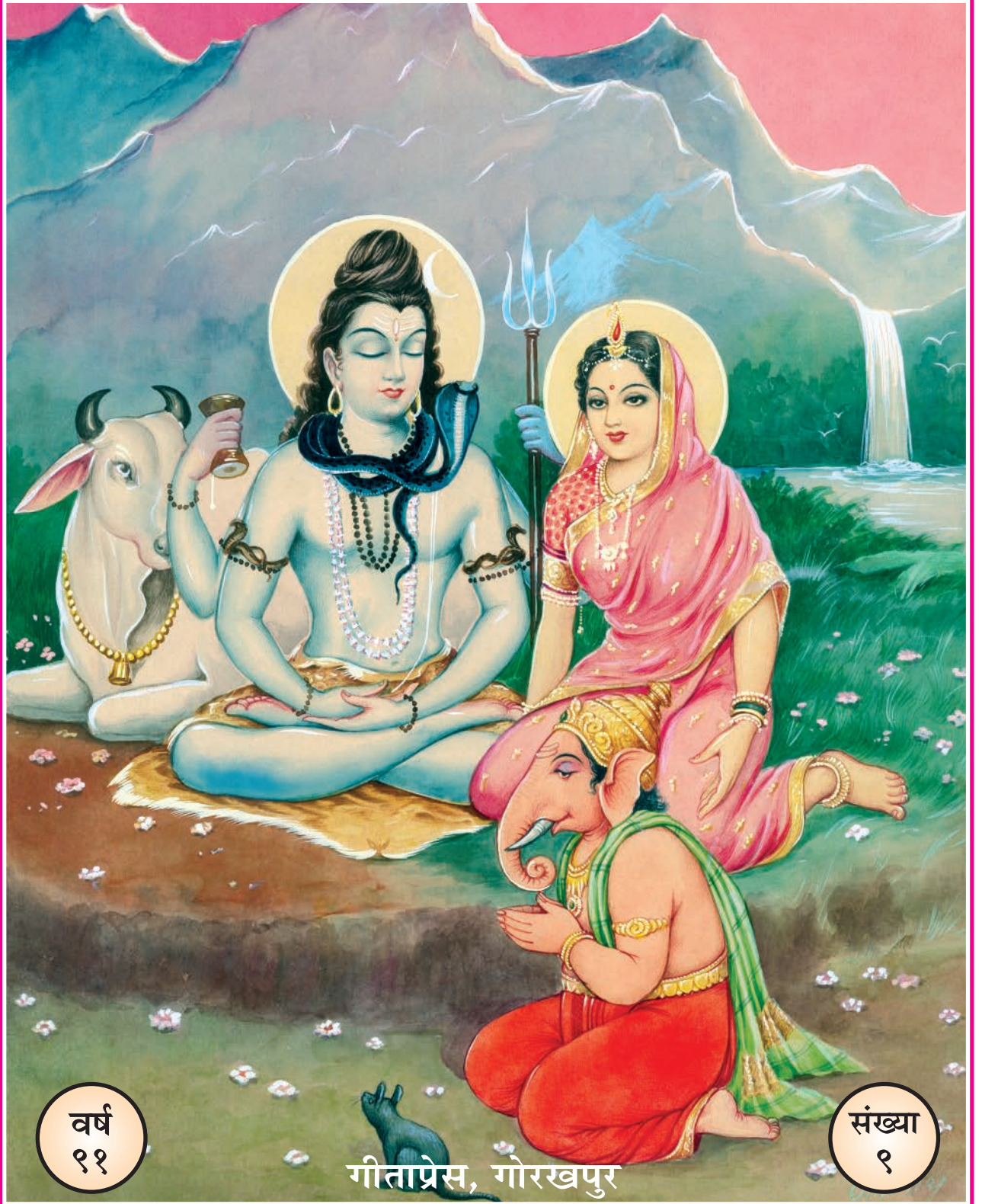
गणेशजीद्वारा माता-पिताकी वन्दना

बाल गोपालका मातासे गोदोहनका आग्रह

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

वन्दे वन्दनतुष्टमानसमतिप्रेमप्रियं प्रेमदं पूर्णं पूर्णकरं प्रपूर्णनिखिलैश्वर्यैकवासं शिवम्।
सत्यं सत्यमयं त्रिसत्यविभवं सत्यप्रियं सत्यदं विष्णुब्रह्मनुतं स्वकीयकृपयोपात्ताकृतिं शङ्करम्॥

वर्ष ९१ | गोरखपुर, सौर आश्विन, वि० सं० २०७४, श्रीकृष्ण-सं० ५२४३, सितम्बर २०१७ ई० | संख्या ९

पूर्ण संख्या १०९०

'दै री मैया दोहनी, दुहिहौं मैं गैया'

दै री मैया दोहनी, दुहिहौं मैं गैया।
माखन खाएँ बल भयौ, करौं नंद-दुहैया॥
कजरी धौरी सेंदुरी, धूमरि मेरी गैया।
दुहि ल्याऊँ मैं तुरतहीं, तू करि दै धैया॥
ग्वालिनि की सरि दुहत हौं, बूझहि बल भैया।
सूर निरखि जननी हँसी, तव लेति बलैया॥

[श्याम बोले—] 'मैया री! मुझे दोहनी दे, मैं गाय दुहूँगा। मक्खन खानेसे मैं बलवान् हो गया हूँ।' यह बात बाबा नन्दकी शपथ करके कहता हूँ। 'कजरी, धौरी, लाल, धूमरी आदि मेरी जो गायें हैं, मैं उन्हें तुरन्त दुह लाता हूँ, तू धैया (ताजे दूधके ऊपरसे निकाला हुआ मक्खन) तैयार कर दे। तू दाऊ दादासे पूछ ले, मैं गोपियोंके समान ही दुह लेता हूँ।' सूरदासजी कहते हैं—[अपने लालको] देखकर माता हँस पड़ीं और तब बलैया लेने लगीं। [सूरसागर]

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

(संस्करण २,१५,०००)

कल्याण, सौर आश्विन, वि० सं० २०७४, श्रीकृष्ण-सं० ५२४३, सितम्बर २०१७ ई०

विषय-सूची

विषय — **पृष्ठ-संख्या**

चित्र-सूची

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥
जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

सन् २०१८ के लिये शुल्क
एकवर्षीय ₹२५०
पंचवर्षीय ₹१२५०

चालू वर्षका शुल्क
एकवर्षीय ₹२२०

विदेशमें Air Mail सजिल्द शुल्क — **वार्षिक US$ 50 (₹3000)**, **पंचवर्षीय US$ 250 (₹15,000)** — **Us Cheque Collection Charges 6$ Extra**

संस्थापक—**ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका**
आदिसम्पादक—**नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार**
सम्पादक—**राधेश्याम खेमका,** सहसम्पादक—**डॉ० प्रेमप्रकाश लक्कड़**
केशोराम अग्रवालद्वारा गोबिन्दभवन-कार्यालय के लिये गीताप्रेस, गोरखपुर से मुद्रित तथा प्रकाशित

website : **gitapress.org** | e-mail : **kalyan@gitapress.org** | **09235400242/244**

सदस्यता-शुल्क—**व्यवस्थापक—'कल्याण-कार्यालय', पो० गीताप्रेस—२७३००५, गोरखपुर को भेजें।**
Online सदस्यता-शुल्क -भुगतानहेतु- gitapress.org पर **Online Magazine Subscription** option को click करें।
अब 'कल्याण' के मासिक अङ्क kalyan-gitapress.org पर नि:शुल्क पढ़ें।

कल्याण

याद रखो—भगवान् शक्ति और ज्ञानके भण्डार हैं। वे तुम्हारे परम सुहृद् हैं, परम प्रेमी हैं। वे सदा-सर्वदा तुम्हारा कल्याण करनेको प्रस्तुत हैं। जिस क्षण तुम्हारा भगवान्में सच्चा विश्वास हो जायगा, उसी क्षण तुम्हारी दुर्बलता दूर हो जायगी, तुम्हारा भय भाग जायगा और सारी प्रतिकूलताएँ तुम्हारे मनके अनुकूल हो जायँगी।

याद रखो—भगवान्के न्याय और सत्यमें विश्वास होते ही हृदयमें कोई डर नहीं रह जायगा। यह अनुभव होगा कि मैं सदा-सर्वदा उस अचिन्त्य महाशक्तिकी छत्रछायामें हूँ। भगवान्की कल्याणमयी मंगलमयी ज्ञानपीयूष-धारासे हृदय सिक्त हो जायगा। इतना सात्त्विक उत्साह उमड़ेगा कि फिर भगवान्की सेवाके बिना एक क्षण भी रहा नहीं जायगा।

याद रखो—भगवान्की सुहृदयतामें विश्वास होते ही जीवन पलट जायगा। अशान्ति सदाके लिये शान्त हो जायगी। स्वार्थपरता निष्कामसेवामें बदल जायगी। असहिष्णुता सहिष्णुता, धीरता उदारता और वदान्यता बन जायगी। गर्व-अभिमान विनय-विनम्रताके रूपमें, असद्भावना सद्भावनाके रूपमें, दोषदर्शन और तीव्र निन्दा गुणदर्शन और प्रशंसाके रूपमें तथा द्वेष प्रेमके रूपमें परिणत हो जायगा। जगत्में सर्वत्र निजजन, आत्मीयजन और अपने बन्धु-ही-बन्धु दिखायी देंगे।

याद रखो—भगवान्की सुहृदता और अहैतुकी प्रीतिमें विश्वास होते ही उनसे माँगना-जाँचना बन्द हो जायगा। फिर यह नहीं कहा जायगा कि 'भगवन्! हमारा अमुक अभीष्ट पूर्ण कर दो और हमें अमुक समय अमुक साधनमें सफलता प्रदान कर दो।' फिर तो भगवान्के प्रत्येक विधानमें कल्याणके दर्शन होंगे।

याद रखो—जो लोग भगवान्से कोई निर्दिष्ट कार्य करवाना चाहते हैं और उन्हें उसका साधन बतलाते हैं, उनका वस्तुतः भगवान्में सच्चा विश्वास ही नहीं है। वह तो विश्वासाभास है। सच्चा विश्वास होनेपर तो भगवान् उनसे जो कराते हैं, जैसे कराते हैं और जो कुछ फल प्रदान करते हैं, वे उसीमें सन्तुष्ट रहते हैं। विश्वासी पुरुष भगवान्के स्वयं-निर्दिष्ट पथमें कामना, स्वार्थ या अहंकारवश अपना मत बताकर बाधा डालनेकी मूर्खता नहीं करते। बल्कि प्रतिकूल दीखनेपर भी वे भगवान्के निर्दिष्ट पथपर ही प्रसन्नतासे चलते हैं और भगवान्के दिये हुये प्रत्येक दानको परम मंगलमय जानकर सिर चढ़ाते हैं।

याद रखो—तुम्हारा यथार्थ मंगल किस बातमें और क्या है; कब, किस प्रकारसे और किस सूत्रसे तुम्हें उस मंगलकी शीघ्र प्राप्ति हो सकती है; एवं शीघ्र प्राप्त होनेमें तुम्हारा कल्याण है या देरसे प्राप्त होनेमें—इन सब बातोंको पूर्णरूपसे तथा सत्यरूपसे भगवान् ही जानते हैं। तुम तो बहुत अमंगलको मंगल मान बैठते हो और ऐसे समय, ऐसे प्रकारसे और ऐसे सूत्रसे उस मंगलको प्राप्त करना चाहते हो कि जिसमें मंगल हो ही नहीं सकता। तुम्हारी मोहाच्छन्न दृष्टि यथार्थको देख ही नहीं पाती। छोटा शिशु जैसे अज्ञानवश सुन्दर समझकर अग्नि और सर्पको पकड़नेके लिये लपकता है, वैसे ही मोहाच्छन्न मनुष्य अनर्थकारी विषयोंकी ओर दौड़ता है। पर जो पुरुष विश्वासपूर्वक छोटे शिशुके मातृपरायण होनेकी भाँति, भगवान्के चरणोंमें आत्मसमर्पण कर चुकते हैं—अपने योग-क्षेमका सारा भार भगवान्को सौंप चुकते हैं, उनके लिये क्या मंगलमय है और वह कब कैसे चाहिये, इस बातका निर्णय भी भगवान् ही करते हैं और भगवान् स्वयं ही ठीक समयपर उन्हें वह मंगलमयी वस्तु प्रदान कर देते हैं। **'शिव'**

आवरणचित्र-परिचय—

प्रथमपूज्य गणेशजी
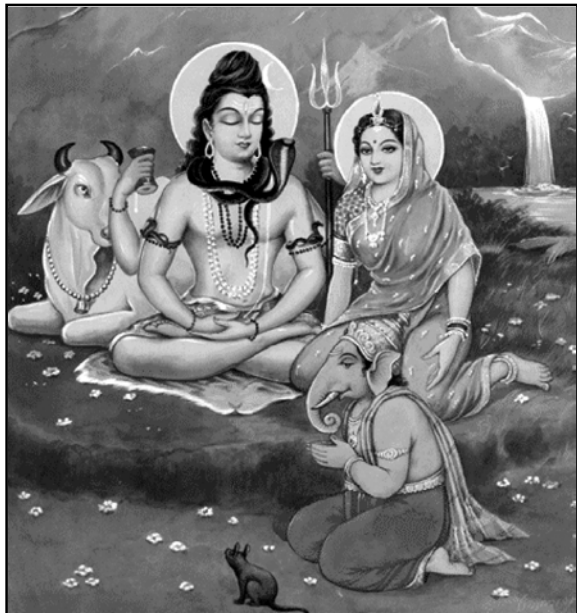
एक बार देवताओंमें विवाद हो गया कि उनमें प्रथम पूज्य कौन है ? जब परस्पर कोई निर्णय न हो सका, तब वे एकत्र होकर लोकपितामह ब्रह्माजीके पास पहुँचे। ब्रह्माजीने कहा—'जो पृथ्वीकी प्रदक्षिणा करके सबसे पहले मेरे पास आ जाय, वही अबसे प्रथम पूज्य माना जायगा।'

देवराज इन्द्र अपने ऐरावतपर चढ़कर दौड़े, अग्निदेवने अपने भेंड़ेको भगाया, धनाधीश कुबेरजीने अपनी सवारी ढोनेवाले कहारोंको दौड़नेकी आज्ञा दी। वरुणदेवका वाहन ठहरा मगर, अत: उन्होंने समुद्री मार्ग पकड़ा। सब देवता अपने-अपने वाहनोंको दौड़ाते हुए चल पड़े। सबसे पीछे रह गये गणेशजी। एक तो उनका तुन्दिल भारी-भरकम शरीर और दूसरे वाहन मूषक। उन्हें लेकर बेचारा चूहा अन्तत: कितना दौड़ता! गणेशजीके मनमें प्रथम पूज्य बननेकी लालसा कम नहीं थी, अत: अपनेको सबसे पिछड़ा देख वे उदास हो गये।

संयोगकी बात—सदा पर्यटन करनेवाले देवर्षि नारदजी खड़ाऊँ खटकाते, वीणा बजाते, भगवद्‌गुण गाते उधरसे आ निकले। गणेशजीको उदास देखकर उन्होंने पूछा—'पार्वतीनन्दन! आज आपका मुख म्लान क्यों है ?'

गणेशजीने सब बातें बतायीं। देवर्षि हँस पड़े, बोले—'बस!' गणेशजीमें उत्साह आ गया। वे उत्कण्ठासे पूछ उठे—'नारदजी! कोई युक्ति है क्या ?'

'बुद्धिके देवताके लिये भी युक्तियोंका अभाव!' देवर्षि फिर हँसे और बोले—'आप जानते ही हैं कि माता साक्षात् पृथ्वीरूपा होती हैं और पिता परमात्माके ही रूप होते हैं। इसमें भी आपके पिता—उन परमतत्त्वके ही भीतर तो अनन्त-अनन्त ब्रह्माण्ड हैं।'

गणेशजीको अब और कुछ सुनना-समझना नहीं था। वे सीधे कैलास पहुँचे और भगवती पार्वतीकी अँगुली पकड़कर छोटे शिशुके समान खींचने लगे—'माँ! पिताजी तो समाधिमग्न हैं, पता नहीं उन्हें उठनेमें कितने युग बीतेंगे, तू ही चलकर उनके वामभागमें तनिक देरको बैठ जा माँ!'

भगवती पार्वती हँसती हुई जाकर अपने ध्यानस्थ आराध्यके समीप बैठ गयीं; क्योंकि उनके मंगलमूर्ति कुमार इस समय कुछ पूछने-बतानेकी मुद्रामें नहीं थे। वे उतावलीमें थे और केवल अपनी बात पूरी करनेका आग्रह कर रहे थे।

गणेशजीने भूमिमें लेटकर माता-पिताको प्रणाम किया, फिर चूहेपर बैठे और सात बार दोनोंकी प्रदक्षिणा की। प्रदक्षिणा करके पुन: साष्टांग प्रणाम किया और माता कुछ पूछें, इससे पहले तो उनका मूषक उन्हें लेकर ब्रह्मलोककी ओर चल पड़ा। वहाँ ब्रह्माजीको अभिवादन करके वे चुपचाप बैठ गये। सर्वज्ञ सृष्टिकर्ताने एक बार उनकी ओर देख लिया और अपने नेत्रोंसे ही मानो स्वीकृति दे दी।

बेचारे देवता वाहनोंको दौड़ाते पूरी शक्तिसे पृथ्वी-प्रदक्षिणा यथाशीघ्र पूर्ण करके एकके बाद एक ब्रह्मलोक पहुँचे। जब सब देवता एकत्र हो गये, ब्रह्माजीने कहा—'श्रेष्ठता न शरीरबलको दी जा सकती है, न वाहनबलको। श्रद्धासमन्वित बुद्धिबल ही सर्वश्रेष्ठ है और उसमें भवानीनन्दन श्रीगणेशजी अग्रणी सिद्ध कर चुके अपनेको।'

देवताओंने पूरी बात सुन ली और तब चुपचाप गणेशजीके सम्मुख मस्तक झुका दिया। देवगुरु बृहस्पतिने उस समय कहा था—'सामान्य माता-पिताका सेवक और उनमें श्रद्धा रखनेवाला भी पृथ्वी-प्रदक्षिणा करनेवालेसे श्रेष्ठ है, फिर गणेशजीने जिनकी प्रदक्षिणा की है, वे तो विश्वमूर्ति हैं, इसे कोई अस्वीकार कैसे करेगा ?'

समयका सदुपयोग

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

मनुष्यको अपना एक क्षण भी व्यर्थ नहीं बिताना चाहिये। आलस्य, प्रमाद, भोग, पाप और अनुचित निद्राको विषके समान समझकर इनका सर्वथा त्याग कर देना चाहिये। मनुष्य-जीवनका अमूल्य समय इन सबमें बितानेके लिये कदापि नहीं है। करनेयोग्य काममें विलम्ब करना 'आलस्य' है; शास्त्रविहित कर्तव्यकर्मकी अवहेलना तथा मन, वाणी, शरीरसे व्यर्थ चेष्टा करना 'प्रमाद' है; स्वाद-शौकीनी,ऐश-आराम, भोग-विलासिता और विषयोंमें रमण करना 'भोग' है; झूठ, कपट, चोरी व्यभिचार, हिंसा आदि 'पाप' हैं और छः घंटेसे अधिक शयन करना 'अनुचित निद्रा' है। कल्याणकामी मनुष्यको चाहिये कि वह इनसे बचकर अपने सारे समयको साधनमय बना ले और एक क्षण भी व्यर्थ न बिताकर प्राण-पर्यन्त साधनके लिये ही कटिबद्ध होकर प्रयत्न करे।

बुद्धिमान् मनुष्यको उचित है कि वह अपने अमूल्य समयको सदा कर्ममें लगाये। एक क्षण भी व्यर्थ न खोये और कर्म भी उच्च-से-उच्च कोटिका करे। जो कर्म शास्त्रविहित और युक्तियुक्त हो, वही कर्तव्य है। गीतामें भगवान्ने कहा है—

युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु।
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा॥

(६।१७)

'दुःखोंका नाश करनेवाला योग तो यथायोग्य आहार-विहार करनेवालेका, कर्मोंमें यथायोग्य चेष्टा करनेवालेका और यथायोग्य सोने तथा जागनेवालेका ही सिद्ध होता है।'

तात्पर्य यह है कि हमारे पास दिन-रातमें कुल चौबीस घंटे हैं, उनमेंसे छः घंटे तो सोना चाहिये और छः घंटे परमात्माकी प्राप्तिके लिए साधनरूप योग करना चाहिये; इसके लिये प्रातःकाल तीन घंटे और सायंकाल तीन घंटेका समय निकाल लेना चाहिये। शेष बारह घंटोंमें मन, इन्द्रिय और शरीरद्वारा शास्त्रानुकूल क्रिया करनी चाहिये, जिसमेंसे छः घंटे जीविका-निर्वाहके लिये न्याययुक्त धनोपार्जनके काममें और छः घंटे स्वास्थ्यरक्षाके लिये युक्तियुक्त शौच-स्नान, आहार-विहार, व्यायाम आदिमें लगाने चाहिये; अथवा यदि छः घंटेमें न्याययुक्त धनोपार्जन करके जीविकाका निर्वाह न हो तो आठ घंटे धनोपार्जनमें लगाकर चार घंटे स्वास्थ्यरक्षा आदिके काममें लगाने चाहिये।

समयका विभाग करके देश, काल, वर्ण, आश्रम, परिस्थिति और अपनी सुविधाके अनुसार अपना कार्यक्रम बना लेना चाहिये। साधारणतया निम्नलिखित कार्यक्रम बनाया जा सकता है—

रात्रिमें दस बजे शयन करके चार बजे उठ जाना, उठते ही प्रातःस्मरण करते हुए चारसे पाँचतक शौच-स्नान, व्यायाम आदि करना, पाँचसे आठतक सन्ध्या-गायत्री, ध्यान, नाम-जप, पूजा-पाठ और श्रुति, स्मृति, गीता, रामायण, भागवत आदि शास्त्रोंका एवं उनके अर्थका विवेकपूर्वक अनुशीलन करते हुए स्वाध्याय करना, आठसे दसतक स्वास्थ्यरक्षाके साधन और भोजन आदि करना, दससे चारतक धनोपार्जनके लिये न्याययुक्त प्रयत्न करना, चारसे पाँचतक पुनः स्वास्थ्य-रक्षार्थ घूमना-फिरना, व्यायाम और शौच-स्नान आदि करना, पाँचसे आठतक पुनः सन्ध्या, गायत्री, ध्यान, नाम-जप, पूजा-पाठ और श्रुति, स्मृति, गीता, रामायण, भागवत आदि शास्त्रोंका, उनके अर्थका विवेकपूर्वक अनुशीलन करते हुए स्वाध्याय करना एवं आठसे दसतक भोजन तथा वार्तालाप, परामर्श और सत्संग आदि करना—इस प्रकार दिन-रातके चौबीस घंटोंको बाँटा जा सकता है। इस कार्यक्रममें अपनी सुविधाके अनुसार हेर-फेर कर सकते हैं; किंतु भगवान्‌के नाम और स्वरूपकी स्मृति हर समय ही रहनी चाहिये; क्योंकि भगवान्‌की सहज प्राप्तिके लिये एकमात्र यही परम साधन है। भगवान्ने गीतामें कहा है

कि जो पुरुष नित्य-निरन्तर मुझमें अनन्यचित्त होकर सदा ही निरन्तर मुझ पुरुषोत्तमको स्मरण करता है, उस नित्य-निरन्तर मुझमें युक्त हुए योगीके लिये मैं सुलभ हूँ अर्थात् उसे सहज ही प्राप्त हो जाता हूँ—

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः।
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः॥

(८।१४)

यदि कहो कि काम करते हुए भगवान्‌के नामरूपकी स्मृति सम्भव नहीं तो यह कहना ठीक नहीं; क्योंकि भगवान्‌ने कहा है—

तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्मामेवैष्यस्यसंशयम्॥

(गीता ८।७)

'इसलिये हे अर्जुन! तू सब समयमें निरन्तर मेरा स्मरण कर और युद्ध भी कर। इस प्रकार मुझमें अर्पण किये हुए मन-बुद्धिसे युक्त होकर तू निःसन्देह मुझको ही प्राप्त होगा।'

जब युद्ध करते हुए भी भगवान्‌की स्मृति रह सकती है तो दूसरे व्यवहार करते समय भगवत्स्मृति रहना कोई असम्भव नहीं। यदि यह बात असम्भव होती तो भगवान् अर्जुनको ऐसा आदेश कभी नहीं देते। यदि कहो कि हमारे तो ऐसा नहीं होता तो इसका कारण है श्रद्धा तथा प्रेमके साथ होनेवाले अभ्यासकी कमी। श्रद्धा-प्रेमकी उत्पत्तिके लिये भगवान्‌के नाम, रूप, लीला, धाम, गुण और प्रभावके तत्त्व-रहस्यको समझना चाहिये तथा भगवान्‌से स्तुति-प्रार्थना करनी चाहिये। भगवान्‌के नाम-रूपकी स्मृति निरन्तर बनी रहे, इसके लिये विवेक-वैराग्यपूर्वक सदा-सर्वदा प्रयत्न भी करते रहना चाहिये। सत्पुरुषोंका संग इसके लिये विशेष लाभकर है। अतः सत्संगके लिये विशेष चेष्टा करनी चाहिये। सत्संग न मिले तो भगवान्‌के मार्गमें चलनेवाले साधक पुरुषोंका संग भी सत्संग ही है और उनके अभावमें सत्-ग्रन्थोंका अनुशीलन भी सत्संग ही है।

मनुष्य अपने समयका यदि विवेकपूर्वक सदुपयोग करे तो वह थोड़े ही समयमें अपने आत्माका उद्धार कर सकता है; मनुष्यके लिये कोई भी काम असम्भव नहीं है। संसारमें ऐसा कोई भी पुरुष-प्रयत्नसाध्य कार्य नहीं, जो पुरुषार्थ करनेपर सिद्ध न हो सके। फिर भगवत्कृपाका आश्रय रखनेवाले पुरुषके लिये भगवत्प्राप्तिरूप परम पुरुषार्थके सिद्ध होनेमें तो बात ही क्या है!

भगवान्‌के नाम-रूपकी स्मृति चौबीसों घंटे ही बनी रहे और वह भी महत्त्वपूर्ण हो, इसका ध्यान अवश्य रखना चाहिये। जिह्वाद्वारा नाम-जप करनेकी अपेक्षा श्वासके द्वारा नामजप करना श्रेष्ठ है और मानसिक जप उससे भी उत्तम है। वह भी नामके अर्थरूप भगवत्स्वरूपकी स्मृतिसे युक्त हो तो और भी अधिक दामी (महत्त्वपूर्ण) चीज है और वह फिर श्रद्धापूर्वक निष्काम प्रेमभावसे किया जाय तो उसका तो कहना ही क्या है। सच्चिदानन्दघन परमात्मा सर्वत्र समानभावसे आकाशकी भाँति व्यापक हैं, वे ही निर्गुण-निराकार परमात्मा स्वयं भक्तोंके कल्याणार्थ सगुण-साकार रूपमें प्रकट होते हैं; इसलिये निर्गुण-सगुण, निराकार-साकार—किसी भी स्वरूपका ध्यान किया जाय, सभी कल्याणकारक हैं; किंतु निर्गुण-सगुण, निराकार-साकारके तत्त्व, रहस्य, गुण, प्रभावको समझते हुए स्मरण किया जाय तो वह सर्वोत्तम है।

संसारमें अधिकांश मनुष्योंका समय तो प्रायः व्यर्थ जाता है और उनमेंसे कोई यदि अपना श्रेष्ठ ध्येय बनाते भी हैं, तो उसके अनुसार चल नहीं पाते। इसका प्रधान कारण विषयासक्ति, अज्ञता और श्रद्धा-प्रेमकी कमी तो है ही, परंतु साथ ही प्रयत्नकी भी शिथिलता है। इसी कारण वे अपने लक्ष्यतक पहुँचनेमें सफल नहीं होते। अतः लक्ष्यप्राप्तिके लिये हर समय भगवान्‌को स्मरण करते हुए समयका सदुपयोग करना चाहिये, फिर भगवान्‌की कृपासे सहज ही लक्ष्यतक पहुँचा जा सकता है।

चौबीसों घंटे भगवान्‌की स्मृति किस प्रकार हो, इसके लिये उपर्युक्त छः घंटे साधनकाल, बारह घंटे व्यवहारकाल और छः घंटे शयनकाल—इस प्रकार समयके तीन विभाग करके उसका निम्नलिखित रूपसे सदुपयोग करना चाहिये।

(१) मनुष्य प्रातःकाल और सायंकाल नियमितरूपसे जो साधन करते हैं, वह साधन इसीलिये उच्चकोटिका नहीं होता कि वे उसे मन लगाकर विवेक और भावपूर्वक

नहीं करते। ऊपरसे क्रिया कुछ होती है और मन कहीं अन्यत्र रहता है। ऐसा नहीं होना चाहिये। साधनके समय मनका भी उसीमें लगना परमावश्यक है। जैसे—सन्ध्या करनेके समय मन्त्रोंके ऋषि, छन्द, देवता और प्रयोजनका लक्ष्य करते हुए विधि और मन्त्रके अर्थका ध्यान रहना चाहिये। गायत्रीमन्त्र बहुत ही उच्चकोटिकी वस्तु है, उसमें परमात्माकी स्तुति, ध्यान और प्रार्थना है; अतः गायत्री-जपके समय उसके अर्थकी ओर ध्यान रखना चाहिये। यह न हो सके तो गायत्री-जपके समय भगवान्का ध्यान तो अवश्य ही होना चाहिये। इसी प्रकार गीता, रामायण, भागवत आदिका पाठ भी अर्थसहित या विवेकपूर्वक अर्थको ख्याल रखते हुए करना चाहिये। भगवान्की मूर्ति-पूजा या मानस-पूजा करते समय भगवान्के स्वरूप और गुण-प्रभावको स्मरण रखते हुए श्रद्धा-प्रेमके साथ विधिपूर्वक पूजा करनी चाहिये। शास्त्र-ज्ञानकी कमीके कारण विधिमें कहीं कमी भी रह जाय तो कोई हर्ज नहीं, किंतु श्रद्धा-प्रेममें कमी नहीं होनी चाहिये। किसी भी मन्त्र या नामका जप हो, उच्चभाव तथा मनःसंयोगके द्वारा उसे उच्च-से-उच्च कोटिका बना लेना चाहिये। एवं ध्यान करते समय तो संसारको ऐसे भुला देना चाहिये कि जिसमें भगवान्के सिवा अपना या संसारका किसीका भी ज्ञान ही न रहे।

हम प्रातः-सायं जितना समय नित्य-नियमित रूपसे साधनमें बिताते हैं, उसे यदि उपर्युक्त प्रकारसे किया जाय तो उतने ही समयके साधनसे छः महीनेमें वह लाभ हो सकता है, जो बिना भावके करनेके कारण पचास वर्षोंमें भी नहीं हुआ। वस्तुतः जिस समय हम साधनके लिये बैठते हैं, उस समय तो हमारा प्रत्येक क्षण केवल साधनमें ही बीतना चाहिये। हम यदि अपने पारमार्थिक साधनके समयको ही समुचित रूपसे साधनमय नहीं बना लेंगे और शीघ्र सफल बनानेके लिये तत्पर नहीं होंगे तो फिर अन्य समयमें भगवच्चिन्तन करते हुए कार्य करना तो और भी कठिन है। अतएव हमें इसके लिये कटिबद्ध होकर प्रयत्न करना चाहिये। इस बातका पता लगाना चाहिये कि वे कौन-सी अड़चनें हैं, जिनके कारण नियमितरूपसे साधन करनेके लिये दिये हुए समयमें भी मन उसमें नहीं लगता और समय तो यों ही बीत जाता है तथा प्रयत्न करनेपर भी उसमें कोई सुधार नहीं होता।

एवं पता लगनेपर उन अड़चनोंको तुरंत दूर करनेका सफल प्रयास करना चाहिये। मनको समझाना चाहिये कि 'तुम ऐसे अपने परम हितके कार्यमें भी साथ नहीं दोगे तो इसका परिणाम तुम्हारे लिये बहुत ही भयानक होगा। हजार काम छोड़कर पहले इस कामको करना चाहिये। यह काम तुम्हारे बिना और किसीसे सम्भव नहीं। इसके सामने दूसरे-दूसरे कामोंमें हानि भी हो तो उसकी परवाह नहीं करनी चाहिये; क्योंकि वे तो तुम्हारे न रहनेपर भी हो सकते हैं, उन्हें दूसरे भी कर सकते हैं; किंतु तुम्हारे कल्याणका काम तो दूसरे किसीसे सम्भव नहीं।' इसपर भी यदि दुष्ट मन दूसरे कामकी आवश्यकता बतलाये तो उसे फिर समझाना चाहिये कि इससे बढ़कर और कोई आवश्यक काम है ही नहीं।

(२) आलस्य, प्रमाद, भोग, पाप और अनुचित निद्रामें जीवनके एक क्षणको भी नहीं बिताना चाहिये। सामाजिक, धार्मिक, शरीरनिर्वाहसम्बन्धी एवं स्वास्थ्यरक्षा आदिके जो भी व्यवहार हों, सभी शास्त्रानुकूल और न्याययुक्त ही होने चाहिये। प्रत्येक क्रियामें निष्कामभाव और भगवदर्पण या भगवदर्थबुद्धि रहनी चाहिये। इस प्रकार किये जानेपर मनुष्य समस्त बन्धनोंसे मुक्त होकर परमात्माको प्राप्त हो सकता है। भगवान्ने गीतामें कहा है—

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम्॥
शुभाशुभफलैरेवं मोक्ष्यसे कर्मबन्धनैः।
संन्यासयोगयुक्तात्मा विमुक्तो मामुपैष्यसि॥

(९।२७-२८)

'हे अर्जुन! तू जो कर्म करता है, जो खाता है, जो हवन करता है, जो दान देता है और जो तप करता है, वह सब मेरे अर्पण कर। इस प्रकार, जिसमें समस्त कर्म मुझ भगवान्के अर्पण होते हैं—ऐसे संन्यासयोगसे युक्त चित्तवाला तू शुभाशुभ फलरूप कर्मबन्धनसे मुक्त हो जायगा और उनसे मुक्त होकर मुझको ही प्राप्त होगा।'

हमारी सारी क्रियाएँ जब भगवान्की प्रेरणा और आज्ञाके अनुसार निरभिमानता और निष्कामभावसे

भगवान्‌की स्मृति रहते हुए होने लगें तब समझना चाहिये कि हमारी क्रियाएँ भगवदर्पण हैं। जो क्रियाएँ भगवत्प्राप्त्यर्थ या भगवत्प्रीत्यर्थ अथवा भगवान्‌की आज्ञा-पालनके उद्देश्यसे भगवान्‌को स्मरण रखते हुए निष्कामभावसे की जाती हैं, उन्हें भगवदर्थ कहा जाता है। हमारा सारा समय जब इसी भावमें बीतने लगे तब उसे उच्च-से-उच्च कोटिका समझना चाहिये। मनुष्य चाहे तो प्रयत्न करनेपर भगवत्कृपासे वह व्यवहारके सारे समयको सदा-सर्वदा इसी प्रकार बिता सकता है, फिर दिनके बारह घंटोंको इस प्रकार बितानेमें तो बात ही क्या है! भगवान्‌का आश्रय लेकर उनके नाम-रूपको याद रखते हुए सदा-सर्वदा कर्मोंकी चेष्टा करनेपर मनुष्य भगवान्‌की कृपासे शाश्वत अविनाशी पदको प्राप्त हो जाता है। भगवान्‌ने गीतामें कहा है—

सर्वकर्माण्यपि सदा कुर्वाणो मद्व्यपाश्रयः।
मत्प्रसादादवाप्नोति शाश्वतं पदमव्ययम्॥

(१८।५६)

व्यवहारकालके सुधारके लिये दो बातोंपर विशेष ध्यान रखना चाहिये—

(क) प्रत्येक क्रियामें निष्कामभावसे स्वार्थका त्याग और (ख) भगवान्‌के नाम-रूपकी स्मृति। ये सब काम भी वैराग्य और अभ्याससे ही सिद्ध होते हैं। वैराग्यसे निष्कामभाव और स्वार्थ-त्याग होता है और तीव्र अभ्याससे भगवान्‌के नामरूपकी स्मृति रहती है।

अतः हमें अपने उद्देश्यको सिद्ध करनेके लिये भगवान्‌के शरण होकर श्रद्धा-प्रेमपूर्वक साधन करना चाहिये। ऐसा करनेसे परमात्माकी कृपासे हम शीघ्र ही कृतकार्य हो सकते हैं।

(३) साधन तथा व्यवहारकालमें तो कुछ होता भी है; परंतु शयनका समय तो नासमझीके कारण अधिकांशमें सर्वथा व्यर्थ ही जाता है। मनुष्य जिस समय सोने लगता है, उस समय उसके चित्तमें जिन सांसारिक संकल्पोंका प्रवाह बहता रहता है, उसे निद्रामें प्रायः वैसे ही स्वप्न आते हैं। संकल्पोंकी दृढ़ता ही स्वप्नमें सच्ची घटनाके रूपमें प्रतीत होने लगती है और इस प्रकार हमारा रातभरका सारा समय व्यर्थ चला जाता है। इस कालका सुधार भी वैराग्य और अभ्याससे हो सकता है। हमें चाहिये कि सोनेसे पूर्व कम-से-कम पंद्रह मिनट शयनकालके संकल्पोंके सुधारके लिये संसारको नाशवान्, क्षणभंगुर, अनित्य और दुःखरूप समझकर उसके संकल्पोंका त्याग करके भगवान्‌के निर्गुण-सगुण, निराकार-साकारमेंसे जिस स्वरूपमें भी अपनी श्रद्धा-रुचि हो, उसी नाम-रूपका या भगवान् श्रीकृष्ण, श्रीराम आदि सगुण-साकार स्वरूपके गुण, प्रभाव, लीला आदिका मनन करते हुए सोयें। विवेक-वैराग्यपूर्वक तत्परतासे तीव्र चेष्टा करनेपर कुछ दिनोंमें यह अभ्यास दृढ़ हो सकता है। दृढ़ अभ्यास हो जानेपर स्वप्नमें भी भगवद्विषयक ही संकल्प होंगे और तदनुसार स्वप्नमें भी भगवन्नाम, लीला, स्वरूप, गुण और प्रभावके दृश्य हमारे सामने आते रहेंगे। यों स्वप्न-जगत् भी साधनमय हो जायगा। अतएव वह समय भी साधनका ही एक अंग बन जायगा।

मनुष्य-जन्मका प्रत्येक क्षण मूल्यवान् है। इस रहस्यको समझनेवाला व्यक्ति एक क्षणको भी व्यर्थ कैसे खो सकता है? परलोक और परमात्मापर विश्वास न होने और भगवत्प्राप्तिका माहात्म्य न जाननेके कारण ही मनुष्य अपने उद्धारकी आवश्यकता ही नहीं समझता। इसी कारण वह संसार-सुखकी अभिलाषामें मानव-जीवनके अमूल्य समयको व्यर्थ खो देता है; परंतु सच्ची बात तो यह है कि संसारका सम्पूर्ण सुख मिलकर भी परमात्माकी प्राप्तिके सुखकी तुलनामें समुद्रमें एक बूँदके तुल्य भी नहीं है। जैसे अनन्त आकाशके किसी एक अंशमें नक्षत्र हैं, उसी प्रकार विज्ञानानन्दघन परमात्माके किसी एक अंशमें यह सारा ब्रह्माण्ड स्थित है। जीवको यदि संसारका सम्पूर्ण सुख भी मिल जाय तो भी वह उस ब्रह्मसुखके अंशका एक आभासमात्र ही है। और वह सुखाभास भी वस्तुतः सच्चिदानन्दमय परमात्माके संयोगसे ही है। अतः मनुष्यको उस अनन्त सुखरूप परमात्माकी प्राप्तिके लिये ही अपना सारा समय लगाना चाहिये। तभी समयका सदुपयोग है और तभी जीवनकी सार्थकता है।

आध्यात्मिक धनकी श्रेष्ठता

(पं० श्रीजयकान्तजी झा)

जिस प्रकार भौतिक धन सांसारिक वस्तुओंका होता है, उसी प्रकार आध्यात्मिक धन मनुष्यके सद् विचारोंका होता है। किसी मनुष्यके मनमें जबतक सद् विचार है और जहाँतक वह दूसरोंके हितकी कामना अपने मनमें रखता है, वहाँतक वह आध्यात्मिक दृष्टिसे धनी है। भौतिक धनकी वृद्धिसे मनुष्यमें अपने-आपके विषयमें चिन्ता करनेका अभ्यास बढ़ता है, किंतु आध्यात्मिक धनकी वृद्धि होनेपर वह अपने स्वार्थको विस्मरण करना सीखता है और दूसरोंको सुखी बनानेके लिये सदा चिन्तन करता रहता है। जो व्यक्ति जितना ही अधिक दूसरोंके कष्ट-निवारणके लिये तत्पर रहता है, वह उतना ही आध्यात्मिक दृष्टिसे धनी है। महात्मा बुद्ध, सुकरात, स्वामी विवेकानन्द आदिके पास एक पैसा भी नहीं था, पर वे आध्यात्मिक दृष्टिसे धनी थे; क्योंकि वे अपने-आपको भूलकर संसारके दुःख-विनाशमें ही सदा लगे रहते थे।

भौतिक धन मनुष्यके पास कितना भी क्यों न हो, जबतक उसे इस धनकी चाह है, तबतक वह दीन-दरिद्र ही बना रहता है। इस धनके बढ़नेसे धनकी चाह कम नहीं होती, अपितु और भी बढ़ जाती है। वह सदा असन्तुष्ट रहता है। उसका यह असन्तोष उसे सदा दुःख दिया करता है। जो व्यक्ति धनी लोगोंकी खुशामद किया करते हैं अथवा उनसे ईर्ष्या-वैर करते हैं, वे भौतिक और आध्यात्मिक दोनों ही दृष्टियोंसे निर्धन हैं। धनी लोगोंकी निन्दा करनेवालोंको जब धन मिल जाता है, तब वे भी उसी प्रकार धनके गुलाम हो जाते हैं, जिस प्रकार दूसरे धनी हैं। इससे यह स्पष्ट है कि निर्धन होना ही पुरुषार्थ नहीं। आध्यात्मिक धन तात्त्विक वस्तु है। इसके प्राप्त होनेपर ही मनुष्य अपनी निर्धन-अवस्थामें भी प्रसन्नचित्त रहता है। वह अपने-आपको संसारके सम्राट्के समान सुखी और भाग्यवान् मानता है। इस धनकी एक परख यह है कि इस धनका स्वामी दूसरोंका प्यारा होता है। वे उसे हृदयसे चाहते हैं। भौतिक धनके स्वामीको अपने भाई, पुत्र और स्त्री भी हृदयसे नहीं चाहते। वह सदा उन्हें सन्देहकी दृष्टिसे देखता है। इसके कारण वे भी उससे वहींतक प्यार करते हैं, जहाँतक धनका लाभ उन्हें उससे होता है। भौतिक धनके स्वामीका धन नाश होनेपर उसे कोई नहीं पूछता; पर आध्यात्मिक धनके स्वामीको अपने प्रेमियोंसे तिरस्कृत होनेका कोई भय नहीं रहता। मनुष्य जैसे विचार दूसरे व्यक्तिके पास भेजता है, उसे वैसे ही विचार उससे मिलते हैं। यदि हम वैर, द्वेष और सन्देहके विचार दूसरे व्यक्तिके पास भेजेंगे तो हमें भी वैर, द्वेष और सन्देहके ही विचार मिलेंगे और यदि हम प्रेम और विश्वासके ही विचार उनके पास भेजेंगे तो उनसे भी हमें प्रेम और विश्वासके ही विचार मिलेंगे। मनुष्य अभ्यासका दास है। जिस मनुष्यका अभ्यास जैसा हो जाता है, उसके पास वैसे ही विचार स्वभावतः आते हैं।

मनुष्यका आध्यात्मिक धन उसके अच्छे विचारोंका अभ्यास है। हमारे विचारोंका प्रवाह हमारे अभ्यासके ऊपर निर्भर करता है। जैसे विचार हम अपने मनमें सदा आने देते हैं, वैसे ही विचार बार-बार हमारे मनमें आते रहते हैं। जब हम किसी बुरे विचारको अपने मनमें लाते हैं, तब वह भी अपनी दूषित मनोवृत्तिके कारण उस समय हमें भला ही लगता है, पर वह हमारे मनको क्लेशित कर जाता है। बार-बार अपने मनमें बुरे विचारोंको लानेसे मन इतना निर्बल हो जाता है कि फिर यदि हम उन विचारोंका मनमें आना रोकना भी चाहें तो वे विचार रुकते नहीं। मानसिक रोगकी अवस्थामें रोगीके मनमें जब कोई अभद्र विचार घुस जाता है तो फिर वह रोकनेका प्रयत्न करनेपर भी नहीं रुकता। वह मनुष्यको बहुत भारी त्रास देता रहता है। ऐसी अवस्थामें सुखकी सभी बाह्य सामग्री उपस्थित रहनेपर भी वह व्यक्ति सुखका उपभोग नहीं कर पाता। इस प्रकारके विचारोंको रोकनेके लिये कई दिनोंतक उसके विपरीत अभ्यास करना पड़ता है। दूसरोंके विषयमें कुचिन्तन करनेसे मनुष्यकी आध्यात्मिक शक्तिका ह्रास हो जाता है। इसके ह्रास हो जानेपर फिर मनुष्य अपने ही विषयमें कुचिन्तन करने लगता है। उसके विचार आत्मविनाशक बन जाते हैं। अतएव हर समय अपने विचारोंको देखते रहना आवश्यक है। अपने मनके

दरवाजेपर हमें सदा-सर्वदा एक सावधान और नित्य जाग्रत् पहरेदार बैठा देना चाहिये, जो बुरे विचारोंका आना रोके और भले विचारोंका प्रवेश कराये एवं सतत हमारे आध्यात्मिक धनकी रखवाली करे।

भौतिक धन जैसे बहुत-से मकान, घोड़े, हाथी, मोटर आदि तो दृष्टिगोचर हैं; पर आध्यात्मिक धन पहचानना इतना सरल नहीं है। यदि कहा जाय कि जिस व्यक्तिके पास भौतिक धन नहीं है, वह आध्यात्मिक दृष्टिसे धनी है तो यह ठीक नहीं होगा। फिर तो प्रत्येक गरीब, भिखारी आध्यात्मिक धनका प्रभु मान लिया जायगा। ऐसा ही होता तो आध्यात्मिक धनकी प्राप्तिके लिये सतत प्रयत्नकी कोई आवश्यकता न होती। सभी निर्धन, निकम्मे व्यक्ति आध्यात्मिक दृष्टिसे धनी मान लिये जाते। पर वस्तुत: यह बात नहीं है। जिन लोगोंके पास न तो भौतिक धन होता है और न आध्यात्मिक ही, वे भौतिक धनवालोंसे डाह करते हैं और उनका विनाश करना चाहते हैं। वे वास्तवमें आध्यात्मिक दृष्टिसे सर्वथा निर्धन हैं। आध्यात्मिक दृष्टिसे धनी तो वे लोग हैं, जिन्हें भौतिक धनकी तनिक भी स्पृहा नहीं है और यदि संयोगसे उन्हें भौतिक धन प्राप्त हो ही जाय तो वे उसे लोगोंमें अनायास बाँट देते हैं और सदा-सर्वदा आत्म-सन्तोषकी अनुभूति करते रहते हैं। इस प्रकारके धनके स्वामी इने-गिने ही होते हैं और उनको पहचानना कठिन होता है; क्योंकि वे जो कुछ करते हैं, सब सहजस्वभावसे ही करते हैं—विज्ञापनके लिये नहीं। ऐसे व्यक्ति अपने निन्दकोंको प्यारकी दृष्टिसे देखते हैं। जिन्हें सामान्य लोग शत्रुके रूपमें देखते हैं, उन्हें वे अपना मित्र समझते हैं। श्रीकबीरदासजी कहते हैं—

निंदक नियरे राखिये आँगन कुटी छवाय।
बिनु पानी साबुन बिना निरमल करै सुभाय॥

इस प्रकार सभी लोगोंको कल्याणकारी मानकर आध्यात्मिक धनके प्रेमीको किसीके भी प्रति बुरी भावना नहीं होती। जिस प्रकारका सतत प्रयत्न भौतिक धनके उपार्जन, संचय और संरक्षणके लिये संयमके रूपमें करना पड़ता है, उससे कहीं अधिक प्रयत्न आध्यात्मिक धनके संचयमें करना पड़ता है। जिसे किसी भौतिक लाभकी चाह नहीं, जो संसारके धनी लोगोंकी निन्दा नहीं करता और न उनका विनाश ही चाहता है, वरं उन्हें दयाका पात्र समझता है, वही आध्यात्मिक धनका स्वामी कहा जा सकता है। आध्यात्मिक धनका स्वामी धन प्राप्त होनेपर प्रसन्न न होकर उसे एक प्रकारकी झंझट समझता है। एक बार एक साधुके पास, जो जंगलमें अपनी कुटियामें अकेला रहता था और जो गाँवके लोगोंकी दी हुई रोटी खाकर अपना जीवन-निर्वाह करता था, एक धनी व्यक्ति आया। उसने चाहा कि वह उस साधुकी कई दिनोंके लिये भोजनकी व्यवस्था कर दे। अत: उसने एक अशरफी निकालकर साधुको देना चाहा। साधु अशरफी देखकर बोला—'इसकी आवश्यकता मुझे नहीं है। इसे तुम किसी गरीबको दे दो।' साधुके वचन सुनकर धनी व्यक्ति चकित हो गया कि इससे अधिक गरीब और कौन होगा? उसने साधुसे पूछा—'महाराज! मैं किस गरीबको इसे दूँ?' साधुने जवाब दिया—'एक गरीब नित्य प्रति इधरसे जाता है, उसीको यह अशरफी दे देना।' इतनेमें वहाँ राजाकी सवारी आ निकली। साधुने संकेत किया कि वह गरीब आ गया। उस धनी व्यक्तिने राजाको जब अपने हाथमें अशरफी रखकर दिखायी, तब उसने भेंट समझकर उसे ले लिया। सारांश यह कि भौतिक धन मनुष्यके पास कितना ही क्यों न हो, किंतु जबतक उसे इस धनकी चाह है, तबतक वह गरीब ही बना हुआ है। इसके विपरीत आध्यात्मिक धनका स्वामी अपने आपको संसारके बादशाहके समान सुखी और सम्पन्न समझता है। ऐसे ही लोगोंके बारेमें श्रीकबीरदासजीने कहा है—

चाह गई चिंता गई मनुवा बेपरवाह।
जिनको कछू न चाहिये, सो जग शाहंशाह॥

अत: जबतक मनुष्य दैन्य-भावसे मुक्त नहीं होता, तबतक उसे आध्यात्मिक दृष्टिसे धनी नहीं माना जा सकता। आध्यात्मिक धनवाले व्यक्तिको सदा भौतिक धन देनेकी इच्छा रहती है, लेनेकी नहीं। वह दूसरोंकी सेवा धन-प्राप्तिके लिये नहीं, वरं उनका हित करनेमात्रके लिये ही करता है। अतएव हमें आध्यात्मिक धनकी सतत वृद्धि करनेके लिये हर समय अपने विचारोंका निरीक्षण करते रहना आवश्यक है, जिससे बुरे विचारोंका आना रुके और भले विचारोंका सदा स्वागत होता रहे।

मान-बड़ाई—मीठा विष

(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

मनुष्य जहाँ सर्वजीवोंकी अपेक्षा विलक्षण शक्ति-सामर्थ्ययुक्त है, वहाँ एक ऐसी दुर्बलताको धारण करता है, जो पशु-पक्षी, कीट-पंतगोंमें नहीं होती है। वह दुर्बलता है—मान-बड़ाईकी इच्छा, यश-कीर्तिकी कामना। यह बड़े-बड़े त्यागी कहलानेवालोंमें—माने-जानेवालोंमें और अपनेको महान् त्यागी समझनेवालोंमें भी प्राय: पायी जाती है। इसको लोग दोषकी वस्तु नहीं मानते और इतिहासमें नाम अमर रहनेकी वासना रखते और कामना करते हैं। यह मीठा विष है, जो अत्यन्त मधुर प्रतीत होता है, परंतु परिणाममें साधन-जीवनकी समाप्तिका कारण बन जाता है। वह भी मान-बड़ाई किसकी? शरीरकी और नामकी! जो शरीरको और नामको अपना स्वरूप मानता है और उनकी पूजा-प्रतिष्ठा, उनका नाम-यश चाहता है, वह नाम-रूपोंमें अहंभाव रखनेवाला ज्ञानी है या अज्ञानी?

यह प्रत्यक्ष है कि शरीर माता-पिताके रज-वीर्यका पिण्ड है और माताके गर्भमें इसका निर्माण हुआ है। यह आत्मा नहीं है और नाम तो प्रत्यक्ष कल्पित है। जब यह माताके गर्भमें था, तब तो यही पता नहीं था कि यह लड़कीका है या लड़काका? प्रसव होनेके बाद नामकरण हुआ। वह नाम अच्छा नहीं लगा, दूसरा बदला गया, तीसरा बदला गया। न मालूम कितनी बार परिवर्तन हुआ। ऐसे शरीर (रूप) और नाममें अहंता करके, उनको आत्मा मानकर उनकी पूजा-प्रतिष्ठाकी कामना करना प्रत्यक्ष अज्ञानकी जयघोषणा है। अपने अज्ञानका साक्षात् परिचय देना है। परंतु किससे कहा जाय और कौन कहे; कुएँमें भाँग जो पड़ी है! बड़े-बड़े त्यागी-महात्मा अपने जीवन-कालमें ही अपनी पाषाण या धातु-मूर्तिका निर्माण करवाकर, छायाचित्रोंको देकर उनकी पूजा करवाते हैं, अपने नामका जप-कीर्तन करवाते हैं! अपनेको 'ईश्वर' या 'भगवान्' कहलवाते और स्वयं कहते जरा भी संकुचित नहीं होते, वरं इसमें गौरव तथा महत्त्वका अनुभव करते हैं। हमारी समझसे तो यह मोह है और इस मोहका शीघ्र भंग होना अत्यन्त आवश्यक है।

दूसरे यदि किसीकी बड़ाई स्वीकार करते हैं तो यह उनकी निर्मलताका सूचक होता है और बड़ाईवालेकी अमानिताका द्योतक । किसीमें गुण-समूह देखकर कोई दूसरा उसका वर्णन करता है, तब उसमें प्राय: तीन ही बातें होती हैं—१—वह इतना महान् है कि उसे जगत्में सर्वत्र स्वत: केवल गुण ही दीखते हैं, जैसे ब्रह्मदर्शी ज्ञानीको अथवा भगवत्प्रेमीको सर्वत्र ब्रह्म या भगवान्की ही अनुभूति होती है। २—या उसे गुणोंके साथ दोष भी दीखते हैं, पर वह केवल गुणोंको ही ग्रहण करता है, दोषको ग्रहण करता ही नहीं। ३—अथवा उसे दोष-गुण दोनों दीखते तो हैं, पर वह दोषका वर्णन न करके केवल गुणका ही वर्णन करता है। इन तीनों ही बातोंमें गुण-वर्णन करनेवालेका महत्त्व है, यह उसका आदर्श गुण है। गुण सुननेवाला यदि गुण-वर्णन करनेवालेके इस महत्त्वको न समझकर बिना ही हुए अपनेमें उन गुणोंका आरोप कर लेता है, अपनेको उन गुणोंसे सम्पन्न मान लेता है तो वह अनुचित लाभ उठानेका प्रयत्न करता है। यह उसकी मूर्खतामात्र है; क्योंकि किसीके द्वारा गुण बताये जानेसे गुण तो आ नहीं गये। किसी कंगालको यदि कोई करोड़पति बता दे तो इससे वह करोड़पति तो हो नहीं जाता। हाँ, यदि वह मान लेता है तो अपने-आपको धोखा देनेकी मूर्खता अवश्य करता है। ऐसे सद्भावनावाले व्यक्तियोंके सद्भावका हार्दिक सम्मान करता हुआ भी जो अपनेमें सुधारकी और सद्भावोंके संग्रहकी प्रेरणा पाता है, वास्तवमें वही मान-बड़ाईसे अपराजित है। ऐसे व्यक्तियोंपर प्राणिमात्रके सहज

सुहृद् श्रीभगवान्‌की अनन्त कृपा रहती है। वह कृपा तो सभीपर असीम है, पर उसके दर्शन कम लोग कर पाते हैं। इसमें भी अकारण कृपालु भगवान्‌का ही अनुग्रह कारण होता है।

सम्मानमें जब लोगोंद्वारा मालाएँ पहनायी जायँ, सुगन्धित पुष्पोंके सुन्दर हार पहनाये जायँ, तब सम्मान्यके मनमें आना चाहिये कि हम क्या गीतामें लिखे मान और अपमान तथा निन्दा और स्तुतिमें 'सम' हैं—

'मानापमानयोस्तुल्यः', 'तुल्यनिन्दास्तुतिः',

उन्हें सोचना चाहिये कि यदि इस प्रशंसा तथा फूलोंके हारोंके स्थानपर गालियाँ सुननेको मिलतीं और पुष्पहारके बदले जूतोंके हार मिलते तो क्या हमारा यही भाव रहता, जो प्रशंसा सुनने और हार पहननेके समय है? यदि नहीं, तो फिर यह समताकी बातें पढ़कर हमने क्या लाभ उठाया? सच तो यह है कि हम मान-बड़ाईका विरोध तो करते हैं, परंतु हमारे मनमें मान-बड़ाईकी छिपी वासना है, उसीकी पूर्ति हो रही है। यदि वासना न होती और सुख न मिलता, मान-बड़ाईमें गाली तथा जूतोंके हारकी भावना होती तो हम ऐसे अवसरोंसे अलग रहते।

दूसरी बात है—हारों (मालाओं)-से भगवत्पूजन या देवपूजन होना चाहिये, न कि मान-बड़ाईको बढ़ानेके लिये उनके इच्छुकोंकी खुशामदमें उन्हें प्रयुक्त किया जाय। अच्छा तो यह भी था कि वे सुन्दर पुष्प वाटिकाकी शोभा ही बढ़ाते। हमारा देश अब भी बड़ा दरिद्र है। जहाँ करोड़ों भाई-बहन भरपेट भोजन नहीं पाते, अंग ढकनेको वस्त्र नहीं पाते, रहनेको छायादार घर नहीं पाते, वहाँ तो अच्छा खाना-पहनना, अच्छे मकानोंमें रहना, गलीचोंपर और सोफोंपर बैठना ही बड़ा अनुचित है, फिर पुष्पहारोंमें पैसा खर्च कराना तो उचित कैसे कहा जा सकता है? अतः मानव-माल्यार्पणकी परम्पराको संयत समुपयुक्त बनाना चाहिये।

अब रही छायाचित्र (फोटो)-की बात। सो हाड़-मांसके इस शरीरका चित्र क्या महत्त्व रखता है? चित्र तो भगवान् या संतोंके लाभदायक होते हैं। मान-बड़ाई चाहनेवाले मनुष्योंका चित्र उतारना तो सर्वथा उपहासास्पद है, विडम्बना है।

महाभारतमें भगवान्‌ने अर्जुनको उपदेश* दिया था कि बड़ोंके मुँहपर उनकी निन्दा करना उनकी हत्या करना है और अपने मुँहसे अपनी बड़ाई करना आत्म-हत्या है। यह बड़ा ही गर्हित कार्य है। अपने मुखसे अपनी बड़ाई करना आत्महत्याके ही सदृश है। पर यह आत्महत्या तो हमलोग बड़े शौकसे करते हैं। क्या कहा जाय!

---

* यदा मानं लभते माननार्हस्तदा स वै जीवति जीवलोके। यदावमानं लभते महान्तं तदा जीवन्मृत इत्युच्यते सः॥ (महा०कर्ण० ६९। ८१)

अर्थात् इस जीवजगत्‌में माननीय पुरुष जबतक सम्मान पाता है, तभीतक वह वास्तवमें जीवित है। जब वह महान् अपमान पाने लगता है, तब वह जीते-जी मरा हुआ कहलाता है।

ब्रवीहि वाचाद्य गुणानि हात्मनस्तथा हतात्मा भवितासि पार्थ। (महा०कर्ण० ७०। २९)

अर्थात् हे पार्थ! अब तुम यहाँ अपनी ही वाणीद्वारा अपने गुणोंका वर्णन करो। ऐसा करनेसे यह मान लिया जायगा कि तुमने अपने ही हाथों अपना वध कर लिया।

हममें परिवर्तन क्यों नहीं होता ?

(श्रीकृष्णदत्तजी भट्ट)

हममें परिवर्तन न होनेके तीन कारण हो सकते हैं—

१. यह मान बैठना कि हममें कोई दोष है ही नहीं या हमारा दोष ही हमारा गुण है, हमारी विशेषता है, हमारी पर्सनॉलिटी (व्यक्तित्व) है।

२. यह मान बैठना कि हममें कोई परिवर्तन हो नहीं सकता।

३. सच्चे हृदयसे हम अपनेमें परिवर्तन करनेके लिये प्रयत्नशील नहीं होते।

× × ×

मन्दिरमें हम जाते हैं। वहाँ हम भावविभोर होकर गाते हैं—

'मो सम कौन कुटिल खल कामी!
पापी कौन बड़ो जग मोतें सब पतितनमें नामी!!! …'

पर वहींपर, या बाहर निकलनेपर कोई जरा-सी ऐसी बात कह दे, जिससे हमारे किसी दोषका जरा-सा भी संकेत मिलता हो, फिर देखिये, हमारा गुर्राना, फुफकारना और बिगड़ना!

अब कोई पूछे कि 'क्या हो गया भाई! अभी तो आप ही कह रहे थे—**'पापोऽहं पापकर्माहम्……!'** और मैंने जरा-सा बता दिया कि जी हाँ, आप ठीक कहते हैं, तो आप इतने लाल-पीले क्यों होते हैं?'

हमारे पास इसका कोई जवाब तो नहीं है, परंतु हम शब्दोंका मुलम्मा लगाकर अपनी कुछ-न-कुछ सफाई जरूर दे देंगे।

कारण?

कारण यही है कि हम ऊपरसे भले ही अपनेको विनम्र, विनयावनत आदि कुछ भी कहें, पत्रोंमें अपनेको दासानुदास, चरणरज, खाकसार आदि कुछ भी लिखें—भीतरसे हम न तो अपनेको किसीसे नीचा मानते हैं, न किसीसे कम। अपनेमें कोई दोष हम मानते ही नहीं।

हम झूठे हैं, आप हमें 'झूठा' कह तो देखिये! हम बेईमान हैं, आप हमें 'बेईमान' कह तो देखिये! हम चरित्रहीन हैं, आप हमें 'लफंगा' कह तो देखिये! हम चोर हैं, आप हमें 'चोर' कह तो देखिये। इधरकी उधर लगानेमें हमें बहुत रस आता है, आप हमें 'माहिल' कह तो देखिये! दूसरोंके घरमें आग लगानेमें हमें मजा आता है, आप हमें 'जमालो' कह तो देखिये! दूसरोंकी निन्दा करनेमें हमारे चौबीसमें-से कम-से-कम अठारह घंटे बीतते हैं, आप हमें जरा टोक तो दीजिये!

हमारा बस चलेगा तो हम आपको फाड़ खायेंगे। आपको गाली देनेमें, आपपर हाथ चलानेंमें, आपका अनिष्ट करनेमें हम कोई भी बात उठा नहीं रखेंगे।

क्यों?

इसलिये कि आप हमारे मर्मपर प्रहार करते हैं। आप वहीं दबा रहे हैं, जहाँपर हमारा जूता काटता है।

आपका 'मूड' यदि कुछ ठीक हुआ और आपको समझाकर कोई बात कही गयी तो भी आप इतना कहकर टाल देंगे—'क्या करूँ, यह मेरा स्वभाव है, मेरी आदत है, मेरा 'नेचर' है! यह तो नहीं बदल सकता।'

'क्यों नहीं बदल सकता आपका स्वभाव? आपकी आदत किसी औरकी डाली हुई तो है नहीं। आपने ही तो डाली है। आप चाहें तो उसे बदल भी सकते हैं।'—आपसे यदि ऐसा कह दिया जाय तो आप तुरंत उखड़ जायँगे।

× × ×

ऐन मौकेपर आपकी किसी कमजोरीको कोई पकड़ ले, तो आप यह कहकर छूटनेकी कोशिश करेंगे कि जाने दीजिये। हर आदमीमें कुछ-न-कुछ कमजोरी होती है। अब तो मेरी यह कमजोरी मेरे जीवनका अंग बन गयी है।

अच्छा हूँ, बुरा हूँ, जो हूँ सो हूँ। मेरी इस कमजोरीको जानते हुए भी आपको निभाना चाहिये।

तमाशा यह है कि आप मुझसे ही क्यों, सभीसे ऐसी अपेक्षा रखते हैं कि सब लोग आपकी कमजोरीको

निभाएँ, मगर आप खुद? आप किसीकी कमजोरीको निभाना नहीं चाहते, निभाते भी नहीं।

तौलनेके कैसे दो बटखरे हैं हमारे ये!

× × ×

तो, जिन्हें अपने दोष दोष ही नहीं लगते, अपनी कमजोरियाँ क्षम्य लगती हैं, अपनी आदतें सही लगती हैं, अपनी कमियोंसे प्यार होता है, उन्हें कौन सुधार सकता है? किसमें सामर्थ्य है, जो उनमें कोई परिवर्तन कर सके? सोते हुएको जगाया जा सकता है, जो जान-बूझकर आँखें बन्द किये पड़ा है, उसे कौन जगा सकता है?

दोष किसमें नहीं होते? निर्दोष तो केवल एक परमात्मा है।

जो लोग जान-बूझकर अपनी आँखोंपर पट्टी बाँधे हैं, उनको या तो अपने दोष दिखायी ही नहीं देते या दिखायी भी देते हैं तो वे उनकी तरफसे मुँह फेर लेते हैं। उनमेंसे अधिकांश लोग ऊपरसे पाक-साफ दीखनेकी कोशिश करते हैं, पर जबतक दिल साफ नहीं है, ऊपरी सफाईसे कहीं कोई साफ हुआ है? मौका आता है और उनकी कलई खुल जाती है। पर्दाफाश हो जाता है। लोग कह उठते हैं—

उसकी बातोंसे समझ रखा है तुमने उसे खिज्र।
उसके पाँवोंको तो देखो कि किधर जाते हैं!!

विनोबाजी कहते हैं 'गीताप्रवचन'में—

'पानी ऊपर साफ दीखता है। परंतु उसमें पत्थर डालिये, तुरंत ही अन्दरकी गन्दगी ऊपर तैर आयेगी। वैसी ही दशा हमारे मनकी है। मनके अन्त:सरोवरमें नीचे घुटनेभर गन्दगी जमा रहती है। बाहरी वस्तुसे उसका स्पर्श होते ही वह दिखायी देने लगती है। हम कहते हैं, उसे गुस्सा आ गया। तो यह गुस्सा कहीं बाहरसे आ गया? वह तो अन्दर ही था। मनमें यदि न होता तो वह बाहर दिखायी ही न देता।'

× × ×

'यों हमारा पेट साफ ही मालूम होता है; पर एनिमा लेनेके बाद जब हम शौच जाते हैं, तब पता चलता है कि पेटमें कितनी गन्दगी भरी है। मनकी गन्दगीका भी तभी पता चलता है, जब हम विवेक और विचारके जलसे उसे धोते हैं।

हम जब देखेंगे और गौरसे देखेंगे तो यह बात साफ हो जायगी कि हमारे मनके भीतर गन्दगी-ही-गन्दगी भरी है। कोई भी मौका आता है कि वह खटसे बाहर फूट पड़ती है। काम और क्रोध, लोभ और मोह, मद और मत्सरकी गन्दगी रोज ही तो हमारी आँखोंके आगे आती रहती है—नाना रूपोंमें, नाना वेषोंमें। तटस्थ व्यक्तिकी तरह किसी भी दिन हम आत्मविश्लेषण करने बैठें तो तुरंत जाहिर हो जायगा कि इस दूधमें कितना पानी है!'

पर न तो हमें इतनी फुरसत है कि हम अपनी डायरी लिखने बैठें, न हम उसकी कोई जरूरत ही मानते हैं। कभी यदि अपने दोषोंपर नजर पड़ भी जाती है तो हम यह मानकर उन्हें दूर करनेकी बात भी नहीं सोचते कि 'बूढ़े तोते राम-राम नहीं पढ़ते।' हममें कोई परिवर्तन हो ही नहीं सकता। हम जो हैं, सो ही रहेंगें।

× × ×

८ मई १९६० से ८ जून १९६० तक विनोबाने चम्बलके डाकूग्रस्त क्षेत्रकी यात्रा की। उस यात्रामें मैं भी था उनके साथ। बीस डाकुओंने उनके समक्ष आत्मसमर्पण किया और यह प्रतिज्ञा की कि 'अबतक हमसे बहुत गलत काम हुए, अब हम ऐसी गलतियाँ न करेंगे।'

बीस डाकू, इश्तिहारी डाकू, जिनपर कई-कई हजारों रुपयोंके इनाम थे, विनोबाके चरणोंमें आकर गिरते हैं, अपनी बन्दूकें, गनें, स्टेनगनें, अपने कारतूस लाकर डाल देते हैं और प्रतिज्ञा करते हैं कि हम अब लूट-मारकी, डकैतीकी, हत्या और अत्याचारकी जिन्दगी छोड़ते हैं। भविष्यमें हम पवित्र जीवन बितानेका प्रयत्न करेंगे। विद्यारामने कहा ही—'आज तें हमाई नयी जिन्दगी है रही है।' (आजसे हमारा नया जीवन हो रहा है।)

दुनिया चौंक पड़ी। लुक्का और लच्छी, कन्हई और तेजसिंह-जैसे लोगोंने जब अपना जीवन बदलनेका संकल्प किया तो बड़े-बड़ोंने दाँतोंतले अँगुली दबायी।

पर हम तो हम! हम तरह-तरहकी बातें कहने लगे। आखिर एक दिन अपने प्रवचनमें विनोबाको कहना पड़ा—

'बहुत-से लोग ऐसी बात करते हैं कि डाकुओंको रियायत मिली या मिलनेका भरोसा हुआ, इसीलिये वे शरण आये होंगे या पुलिसकी वजहसे पीड़ित हुए होंगे, इसलिये आये होंगे। ऐसा इसलिये होता है कि मनुष्यके मनमें यह भाव रहता है कि 'हमारा परिवर्तन तो हुआ नहीं, हम तो पापोंको छोड़ सके नहीं, दूसरोंने ऐसा कैसे किया होगा? लेकिन वे समझते नहीं कि अन्दरका कारण और बाहरका कारण मिलकर ही काम बनता है।'

महात्मा तुकारामकी जिन्दगीके ३१ साल संसारमें गये। उनकी पत्नी मर गयी। तरह-तरहकी आपत्तियोंसे वे गुजरे। लेकिन आज महाराष्ट्रकी हर झोपड़ीमें 'ज्ञानवर तुकाराम' का जप चलता है। भगवान्‌के नामसे उनका नाम मिल गया है। किंतु ये लोग क्या कहते हैं? 'तुकारामपर आफत गुजरी, इसलिये वे संसारसे विरक्त हो गये। उन्हें वैराग्य हो आया!' ऐसा कहनेवाले यह ख्याल नहीं करते कि उससे दस गुनी विपत्ति आनेपर भी बेशर्मीसे संसारमें फँसे रहनेवाले असंख्य लोग हैं।

ऐसा ही मान लिया जाय कि तुकारामको आपत्तिने परमेश्वरकी ओर ढकेल दिया। मैं मान लेता हूँ कि आपत्तिने डाकुओंको मेरे पास आनेकी प्रेरणा दी। गीतामें भगवान्‌ने कहा है, 'तू दु:खमय संसारमें आया है तो तू क्यों नहीं मेरी भक्ति करता?' दु:खका उपयोग पश्चात्ताप होनेमें हुआ तो उस पश्चात्तापकी कीमत कम नहीं होती।'

किसीका लड़का मर गया, तो वह विरक्त होता है। भोगपरायणता छोड़ता है; लेकिन बहुत लोग ऐसे भी हैं जिनका लड़का मर जाता है, तो कहते हैं, ठीक है, दूसरा होगा!' उन्हें विरक्ति नहीं होती।'

होता क्या है? आज हम चाहते ही नहीं कि दुनियामें कोई सत्कार्य बने। इसलिये दूसरेमें विश्वास नहीं रखना चाहते। इसलिये नहीं कि हमारा हृदय खराब है, लेकिन हमारा अनुभव ही वैसा है। मैं मानता हूँ कि उन डाकुओंके मनमें परिवर्तन हुआ है। 'यह जिन्दगी कुत्तेकी-सी है'—ऐसा मानकर ही उन्होंने समर्पण किया हो, तो भी समर्पण तो किया! जितनी संख्यामें उन्होंने समर्पण किया, उतनी मात्रामें तो लोगोंको राहत मिली। यह सब परमेश्वरकी कृपा है।'

×　　×　　×

दीनबन्धु एण्ड्रूज!

कालेज-जीवन समाप्तकर जा पहुँचे दक्षिण-पूर्वी लन्दनके उस हिस्सेमें, जहाँ रहते थे—चोर, जुआरी, शराबी, ठग और धूर्त। चार वर्ष लगाये आपने वहाँ इन दीन भाइयोंकी सेवामें।

इन्हीं लोगोंमें था एक ऐसा व्यक्ति, जिसे दुर्व्यसनोंकी लत-सी पड़ गयी थी। वह शराब पीकर खूब उपद्रव मचाता। नतीजा यह होता कि पकड़कर जेलमें ठूँस दिया जाता।

जब-जब जेलसे छूटकर आता, एण्ड्रूज बड़े प्रेमसे उससे मिलते और उसके कल्याणके लिये प्रभुसे प्रार्थना करते।

अन्तमें एक दिन वह चिढ़कर बोल ही तो पड़ा—'आप क्यो पड़े हैं मेरे पीछे? आप मुझे पक्का ईसाई बनानेपर तुले हैं! पर मैं आपको साफ बता देना चाहता हूँ कि मुझे रत्तीभर विश्वास नहीं आपके भगवान्‌पर, आपके ईसापर!'

'भैया! तुम भगवान्‌पर विश्वास करो या न करो, भगवान् तो तुमपर विश्वास करते हैं। वे तो तुमसे बराबर स्नेह करते हैं!'—कहते हुए एण्ड्रूजने हर बारकी तरह उसे फिर चिपटा लिया गलेसे!

न जाने कौन-सा जादू था एण्ड्रूजके इन शब्दोंमें! उस व्यक्तिका जीवन एकबारगी ही पलट गया। लोग हैरान थे, उसका परिवर्तन देखकर। उससे पूछा गया, क्यों भाई! आजकल तुम्हारा व्यवहार इतना ममतामय कैसे हो गया? तुम्हारी वृत्ति ऐसी शान्तिमयी कैसे हो गयी?'

वह बोला—'जानते नहीं? भगवान् मुझे प्रेम करते हैं; फिर मुझे भी उनके विराट् प्रेमके उपयुक्त बनना चाहिये न?'

कुछ दिनों बाद वह चला गया अफ्रीका और वहाँ अनेक वर्षोंतक पादरीके रूपमें जनताकी सेवा करता रहा।

×　　×　　×

इन सब लोगोंके लिये जीवनका यह परिवर्तन यदि सम्भव है तो हमारे लिये क्यों नहीं है? **[समाप्त]**

साधकोंके प्रति—

[संकल्पोंसे उपरामता और शान्तिका अनुभव]

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

शान्ति कैसे प्राप्त हो?—यह एक सार्वजनिक प्रश्न है। अधोलिखित पंक्तियोंमें इसके समाधानका प्रयास किया गया है। सर्वप्रथम हमें यह दृढ़तासे मान लेना चाहिये कि शान्ति कृत्रिम नहीं, यह स्वतः सिद्ध है। अशान्ति कृत्रिम है, उसका स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं। भूलसे हमींने अशान्तिको मान्यता दे रखी है। इस मान्यताको छोड़ना है।

प्रायः हम सबकी यही मान्यता है कि शान्तिकी प्राप्ति उद्योगसे होती है अर्थात् वह प्रयत्न-साध्य एवं समय-साध्य है। दूसरी ओर हमें शान्ति स्वतः सिद्ध-जैसी प्रतीत होती है, किंतु शास्त्रोंका गम्भीरतापूर्वक अध्ययन करनेपर यह स्पष्ट परिलक्षित होता है कि अशान्ति उत्पन्न होती है; वह कृत्रिम, आगन्तुक और मिटनेवाली है। शान्ति नित्य, सत्य एवं अनादि है। उसका एक बार अनुभव होनेके बाद जीवनसे सदाके लिये अशान्तिका अस्तित्व मिट जाता है। शान्तिका अनुभव कर लेनेके पश्चात् फिर मोह नहीं होता। अशान्ति मोहके कारण ही उत्पन्न होती है; शान्तिका अनुभव होनेपर अज्ञान, मोह, शोक, चिन्ता, दु:ख सदाके लिये मिट जाते हैं। नियम यह है कि जो उत्पन्न होता है, उसका नाश अवश्यम्भावी है, इसलिये अशान्ति भी उत्पत्तिशील होनेके कारण स्वतः सिद्ध नहीं है।

श्रीमद्भगवद्गीता (१८।७२)-के उपदेशके अन्तमें भगवान्‌ने अर्जुनसे पूछा—'पार्थ! क्या तुमने गीताका एकाग्रतासे श्रवण किया? धनंजय! क्या अज्ञानसे उत्पन्न तुम्हारा मोह नष्ट हो गया?'—

कच्चिदेतच्छ्रुतं पार्थ त्वयैकाग्रेण चेतसा।
कच्चिदज्ञानसम्मोहः प्रनष्टस्ते धनंजय॥

उत्तरमें अर्जुन कहते हैं—'हाँ, आपकी कृपासे मेरा मोह नष्ट हो गया (गीता सुननेकी बात भी इस उत्तरमें आ गयी) और मुझे स्मृति प्राप्त हो गयी। अब मैं सन्देहरहित होकर स्थित हूँ, आपकी आज्ञाका पालन करूँगा।'—

नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत।
स्थितोऽस्मि गतसन्देहः करिष्ये वचनं तव॥

'स्मृति' शब्द भूले हुए विषयके पुनः स्मरणके अर्थमें प्रयुक्त होता है। 'भूल मिट गयी'का आशय यह है कि विस्मृति थी, वह अब मिट गयी। प्रकट ही है, जिन वस्तुओं या विषयोंकी विस्मृति हुई थी, वे पहलेसे ही वर्तमान थे, उनका अभाव नहीं था।

'**स्मृतिर्लब्धा**' पद देकर उसी नित्य, अविनाशी तत्त्वकी ओर संकेत किया गया है। अपार असीम शान्ति उसका स्वरूप ही है। यह शान्ति न तो कृत्रिम है, न क्रिया-साध्य है और न योग्यताविशेषसे ही प्राप्त होती है। किसी अन्य वस्तुद्वारा इसका निर्माण भी सम्भव नहीं है, प्रत्युत यह स्वतः है। यहाँ यह शंका हो सकती है कि जब शान्ति स्वतः सिद्ध है तो शास्त्रोंमें यह क्यों कहा गया कि शान्ति प्राप्त होती है? यथा—

निर्ममो निरहङ्कारः स शान्तिमधिगच्छति।

(गीता २।७१)

'(जो) ममता और अहंकाररहित है, वही शान्तिको प्राप्त करता है।'

इसका उत्तर यह है कि प्राणिवर्ग अभी जिस अशान्तिका अनुभव कर रहा है, उसे ही लक्ष्य करके ऐसा कहा गया है। प्रायः लोगोंके मनमें अशान्ति ही देखनेमें आती है और अशान्तिके मिटनेसे शान्तिका अनुभव होता है, इसी भावको लेकर शान्ति-प्राप्तिकी बात कही गयी है।

हम सबका अनुभव है कि जब हमारे मनमें किसी प्रकारकी हलचल पैदा होती है, तब हमें अशान्तिका अनुभव होने लगता है और हलचलके मिट जानेपर अपने-आप शान्ति शेष रह जाती है। जब किसी प्रकारकी कामना नहीं, संसारका चिन्तन नहीं तो शान्ति शेष रहेगी ही।

शान्ति कृति-साध्य नहीं है। क्रिया करनेमें उद्योग आवश्यक है, जो योग्यतानुसार ही सम्भव होता है। सुनना, देखना, बोलना, सोचना, चिन्तन करना—ये सब क्रियाएँ हैं, उद्योग हैं और किन्हीं भी दो व्यक्तियोंकी ये क्रियाएँ एक-सी नहीं होतीं, योग्यतानुसार उनमें भेद

रहता है; किंतु दूसरी ओर न सुनना, न देखना, न बोलना, न सोचना—इनमें भेदकी सम्भावना किंचिन्मात्र भी नहीं है; क्योंकि न करनेमें योग्यताका भेद मिट जाता है। योग्य, साधारण योग्य और अयोग्य—इन तीनोंमें निष्क्रियताकी स्थितिमें कोई भेद नहीं होता। कुछ न सुनने, न करने, न देखनेकी स्थितिमें सब एक हैं। वृत्तियाँ शान्त हो जानेपर सबमें समानता है।

एक मार्मिक बात यह है—हम मनमें उत्पन्न हुई वृत्तियोंको अर्थात् संकल्प-विकल्पको मिटानेका विचार करके उन्हें आदर देते हैं। यह सोचना कि संकल्प-विकल्प मिटाना है, उन्हें आदर देना है। संकल्प-विकल्प तो टिकते ही नहीं, उत्पन्न होते हैं और नष्ट हो जाते हैं। संकल्प हुआ, मिट गया; फिर हुआ, मिट गया। उत्पन्न होनेवाली वस्तु आप ही मिट जाती है, यह नियम है।

प्रश्न—संकल्प-विकल्पसे कैसे छुटकारा हो?

उत्तर—संकल्प-विकल्प न करे, सांसारिक चिन्तन न करे, निर्विकल्प हो जाय।

प्रश्न—न करनेपर भी संकल्प होते हैं?

उत्तर—संसारमें बहुत-से पदार्थ बन रहे हैं, मिट रहे हैं, सुधर रहे हैं और बिगड़ रहे हैं—क्या आप उनकी चिन्ता करते हैं? नहीं; क्योंकि आप उन्हें 'अपना' नहीं मानते। मान लें आपकी एक गाय थी, उसे आपने बेच दिया। क्या फिर आपको उसकी चिन्ता होती है? जिसे आप अपना नहीं मानते, उसकी चिन्ता नहीं करते। संकल्पोंको भी आप अपना न मानें, संकल्प अच्छा है या बुरा—यह भी न देखें, फिर आप अनुभव करेंगे कि शान्ति स्वतः है। अपने आपको परमात्मामें पूर्णतया समर्पित करके कुछ भी चिन्तन न करें। गीतामें कहा गया है—

शनैः शनैरुपरमेद्बुद्ध्या धृतिगृहीतया।
आत्मसंस्थं मनः कृत्वा न किञ्चिदपि चिन्तयेत्॥

(६। २५)

'क्रम-क्रमसे अभ्यास करता हुआ उपरतिको प्राप्त होकर तथा धैर्ययुक्त बुद्धिके द्वारा मनको परमात्मामें स्थित करके कुछ भी चिन्तन न करे।'

'**आत्मसंस्थम्**' अर्थात् आत्मा (परमात्म-तत्त्व)-में स्थित होकर कुछ भी चिन्तन न करे।

प्रश्न—चिन्तन करते नहीं, हो जाता है?

उत्तर—गीतामें कहा है—

उदासीनवदासीनो गुणैर्यो न विचाल्यते।
गुणा वर्तन्त इत्येव योऽवतिष्ठति नेङ्गते॥

(१४। २३)

'जो गुणोंद्वारा विचलित नहीं किया जाता और यह निश्चय कर चुका है कि गुण ही गुणोंमें बरत रहे हैं, वह परमात्मामें स्थित रहता हुआ उस स्थितिसे चलायमान नहीं होता।' तात्पर्य यह कि जो चिन्तन (स्वतः) होता है, साधक उसके प्रति उदासीन हो जाय। उसे 'अपना' न माने। उसमें न राग करे, न द्वेष। उन संकल्पोंके उत्पन्न और नष्ट होनेमें भी उदासीन बना रहे। 'उनसे मेरा सम्बन्ध नहीं है', ऐसा मानकर नित्य परमात्मामें ही स्थित रहे। वस्तुतः हम सब उनमें पहलेसे ही स्थित हैं। परमात्माका चिन्तन हो तो उसमें भी राग अथवा द्वेष न करे, चिन्तनसे उपराम हो जाय अर्थात् चिन्तन होनेपर हर्ष-शोक, विरोध-समर्थन आदि न हो।

चिन्तन जिसमें उत्पन्न और नष्ट होता है, वह आधार तो अचिन्त्य है। उस अचिन्त्य तत्त्वमें सबकी स्थिति स्वतःसिद्ध है। अचिन्त्यका चिन्तन नहीं करना पड़ता। वह तो स्वतः अपना है। जो अपना है, उसे अपना लेना ही '**आत्मसंस्थं मनः कृत्वा न किञ्चिदपि चिन्तयेत्**' की स्थिति है। आत्मामें स्थित होकर कुछ भी चिन्तन न करे तो अनुभव होगा कि शान्ति स्वतःसिद्ध है। यदि यह प्रतीत होता हो कि चिन्तन न करनेसे या इन उपायोंसे शान्ति उत्पन्न हुई है, प्राप्त हुई है तो यह भूल है। अशान्ति संकल्प-विकल्पसे होती थी, जब उनसे अपना सम्बन्ध छूट गया तो वह शान्ति स्वतः शेष रह गयी, जो सदासे थी, सदा है और सदा रहेगी।

'साधन धाम मोच्छ कर द्वारा'

(डॉ० श्रीत्रिलोकीनाथसिंहजी, एम०ए०, पी-एच०डी०, डी०लिट०)

यह बात निर्विवाद है कि मनुष्य इस पृथ्वीके सभी प्राणियोंमें सर्वश्रेष्ठ और अतुलनीय है। उसकी श्रेष्ठताका मुख्य कारण उसका मस्तिष्क है। वह इतना उन्नत और जटिल है कि अन्य प्राणी तो उसके मुकाबले जिन्दा मशीनकी तरह हैं। मनुष्य ईश्वरका अंश होनेसे चेतन और सुखकी राशि है, परंतु जड़ मायाके वशीभूत होकर वह बँध गया है। तुलसीदासजी कहते हैं कि हमारे जड़-चेतन-बन्धकी यह कहानी अकथनीय है। कहाँतक कहा जाय—

सुनहु तात यह अकथ कहानी। समुझत बनइ न जाइ बखानी॥
जड़ चेतनहि ग्रंथि परि गई। जदपि मृषा छूटत कठिनई॥

(रा०च०मा० ७। ११७। १, ४)

मनुष्यको इसी कारण दोहरा संघर्ष करना पड़ रहा है। दो मोर्चोंपर एक साथ अपने अस्तित्वसे जूझना पड़ रहा है। बाहरकी लड़ाईमें उसने विज्ञान और कानूनकी खोज की। भीतरकी लड़ाईमें धर्म साधन बना। पश्चिमी देशोंकी बात तो हम प्राय: करते हैं, किंतु हम वहाँकी भौगोलिक कठिनाइयोंको ध्यानमें नहीं रखते। जहाँ शून्यसे बहुत नीचे तापमान कई महीनोंतक रहता हो और वनस्पतियाँ कम हों, वहाँ मानव-जीवनकी सुरक्षा विज्ञानके कारण ही हुई है। आदमी-आदमीके बीच कलह या सम्बन्धोंके समाधानके लिये संयुक्त राष्ट्र संघ या कानून बने हैं, लेकिन मनुष्यके अन्त:करणकी लड़ाई दुनियाभरमें समान है और धर्म ही उसका समाधान है। तुलसी-साहित्य धर्म-अधर्मके विचारका साहित्य है, वह विवेकप्रधान है—***'धरम राजनय ब्रह्मबिचारू'*** (रा०च०मा० २। २८८। ४) और ***'बिनु बिबेक संसार-घोर-निधि पार न पावै कोई'*** (विनय-पत्रिका ११५)। अन्त:करणकी इस लड़ाईमें धर्मग्रन्थ, सत्संग और अपना अन्त:करण या विवेक तीनोंका सहयोग महत्त्वपूर्ण है। सुप्रसिद्ध अमरीकी विचारक डेल कारनेगीका कथन है कि हमारी कठिनाई अज्ञान नहीं जड़ता है। तुलसीदासजी विनय-पत्रिका (पद १६७)-में कहते हैं—

रघुपति भगति करत कठिनाई।
कहत सुगम करनी अपार जाने सोइ जेहि बनि आई॥

तमाम धर्म और विज्ञानवाले मनुष्यके बारेमें जो खोज कर रहे हैं, उससे यह बात सामने आयी है कि लगातार अच्छाइयोंकी ओर मानव बढ़ रहा है। तुलसी भी इसी आशा और विश्वासके सहारे कहते हैं—

कबहुँक हौं यहि रहनि रहौंगो।
श्रीरघुनाथ कृपाल-कृपा तें संत सुभाव गहौंगो॥

मनुष्यकी समस्या यह है कि बहुत कम लोग विचारकर अपनी मानसिक क्षमताका प्रयोग कर पाते हैं। 'दी पावर ऑफ योर माइंड' पुस्तकमें चिन्तक ओ इरविंग जैकोबसन कहता है कि दो-से दस प्रतिशत लोग ही अपनी मानसिक क्षमताका प्रयोग कर पाते हैं। तुलसी दोहावलीमें कहते हैं, लोग प्राय: भेंड़की तरह चलते हैं—

तुलसी भेड़ी की धँसनि जड़ जनता सनमान।

तुलसीदासजी अपनी दीर्घकालीन साधना और अध्ययनका सार तत्त्व बतलाते हैं कि

बेद पुरान संत मत एहू। सकल सुकृत फल राम सनेहू॥

(रा०च०मा० १। २७। २)

बिनु बिस्वास भगति नहिं तेहि बिनु द्रवहिं न रामु।
राम कृपा बिनु सपनेहुँ जीव न लह बिश्रामु॥
अस बिचारि मतिधीर तजि कुतर्क संसय सकल।
भजहुँ राम रघुबीर करुनाकर सुंदर सुखद॥

(रा०च०मा० ७। ९०)

मनुष्यका मन दैवीय और आसुरी शक्तियोंसे सम्पन्न है। तुलसी विनय-पत्रिकामें संकेत देते हैं ***'तोसे अरु श्रीराम से नाहीं न नई पहचान।'***

रामनाम कामतरु—तुलसीदास अपने काव्यमें शिव और रामको अनेक बार कल्पवृक्ष या कामधेनु कहते हैं। आधुनिक मनोविज्ञानकी सबसे महत्त्वपूर्ण यह खोज है कि मनुष्यका मन ही कल्पवृक्ष है। हमारा चेतन (लगभग १० प्रतिशत) और अचेतन (९० प्रतिशत)

अनन्त शक्तियोंसे सम्पन्न है। अचेतन परम बलशाली और रहस्यमय तो है, किंतु वह अच्छाई-बुराईमें भेद नहीं करता। वह चेतनके बार-बार दोहराये गये आदेशों, कामनाओं आदिका पालन कर देता है।

१९वीं शतीमें सुप्रसिद्ध अमरीकी दार्शनिक मनोवैज्ञानिक विलियम जेम्सने इस ओर ध्यान दिलाया कि मनुष्यकी इच्छाएँ, कल्पनाएँ और विश्वास व्यर्थ नहीं जाते। अब तो इनके महत्त्वपर बहुत खोज हो चुकी है। उनका व्यावहारिक जीवनमें अनेक विधियोंसे खूब उपयोग भी रहा है। तुलसी स्वयं अपने अनुभवसे कहते हैं—

नामु राम को कलपतरु कलि कल्यान निवासु।
जो सुमिरत भयो भाँग तें तुलसी तुलसीदासु॥

(रा०च०मा० १। २६)

राम-नामसे सब कुछ मिलनेवाला है, कोई कमी नहीं रहेगी—

राम नाम काम तरु जोई जोई माँगिहै।
तुलसीदास स्वारथ परमारथ न खांगिहै॥

और भगवान् शिव भी परम ज्ञान और कल्याणकारी हैं—

प्रभु समरथ सर्बग्य सिव सकल कला गुन धाम।
जोग ग्यान बैराग्य निधि प्रनत कलपतरु नाम॥

लेकिन विनय-पत्रिकामें तुलसी मनके भी यही गुण बतलाते हैं—

असन, बसन, पसु बस्तु बिबिध, बिधि सब मनि मँह रह जैसे।
सरग, नरक, चर-अचर लोक बहु, बसत मध्य मन तैसे॥

(विनय-पत्रिका १२४)

मानव-मस्तिष्क एक वीडियो कैमरेकी तरह है। बचपनसे बुढ़ापेतक सारे दृश्य और ध्वनियाँ उसमें सुरक्षित और अंकित रहती हैं। केवल आवश्यकता और रुचिके अनुसार हमारी बाहरी स्मृतिमें कुछ चीजें रहती हैं। तुलसीने अपने कल्याण और सुरक्षाके लिये यह मनोचित्र अपने मानसमें बसा लिया है। वे गीतावलीमें कहते हैं—

सुभग सरासन सायक जोरे।
खेलत राम फिरत मृगया बन, बसति सो मृदु मूरति मन मोरे॥

और अकल्पनीय भयावह परिस्थितियोंमें भी सीताजी यह चित्र अपने मनमें बसाये सुरक्षित हैं—

जेहि बिधि कपट कुरंग सँग धाइ चले श्रीराम।
सो छबि सीता राखि उर रटति रहति हरिनाम॥

(रा०च०मा० ४। २९ (ख))

मानव मन तो एक शराबी बन्दरकी तरह है, जो कहीं स्थिर होकर कुछ पकड़कर बैठ नहीं सकता। जो लोग कुछ नहीं सोचते, वे जडवत् हैं, जो केवल अतीतकी बातें सोचते हैं, उन्होंने दौड़के समय पैरोंमें जंजीर बाँध रखी है। मानव-जीवन अनेक सम्भावनाओंका भण्डार है। उसकी कुंजी उसीके पास है। तुलसीदास चित्त-चंचलताको जानते हैं। वे कहते हैं—

एकौ पल न कबहुँ अलोल चित हित दै पद-सरोज सुमिरौं।

(विनय-पत्रिका १४१)

(हे प्रभु! मैं कभी एक पल स्थिर चित्त होकर, प्रेमसे तुम्हारे चरणकमलोंका स्मरण नहीं करता।)

मानव-मन हजारों प्रकारके भयोंसे घिरा रहता है। प्रभुका ध्यान और उनकी कृपा-निकटताकी अनुभूति असीम सुरक्षा और आनन्दसे मनको भर देती है। बिना इस अनुभवके मनको शान्ति नहीं मिलनेवाली। ध्यान दो प्रकारके हैं—(१) सक्रिय और (२) निष्क्रिय। तुलसी पहले प्रकारके ध्यानकी बात करते हैं—

जागिए न सोइए, बिगोइए जनमु जायँ,
दुख, रोग रोइए, कलेसु कोह-कामको।
राजा-रंक, रागी औ बिरागी भूरिभागी, ये
अभागी जीव जरत, प्रभाउ कलि बामको
तुलसी! कबंध-कैसो धाइबो बिचारु अंध!
धंध देखिअत जग, सोचु परिनामको।
सोइबो जो रामके सनेहकी समाधि-सुखु,
जागिबो जो जीह जपै नीकें राम नाम को।

ध्यान, जप, ज्ञान, भक्ति आदिके द्वारा जीवन निर्मल बनाना चाहिये, शरीरान्तके बाद भी मनुष्यकी प्रवृत्तियाँ नहीं बदलतीं और तब कुछ कर सकना सम्भव भी नहीं होता, इसलिये तुलसीने मानव-जीवनको साधनधाम और मोक्षका द्वार कहा। पराविद्याकी सारी खोजें इसकी पुष्टि कर रही हैं। इसलिये इस बारेमें सावधान रहना चाहिये और अवसर नहीं चूकना चाहिये।

कहानी—

मंगलमयी

(श्रीरामनाथजी 'सुमन')

मुझे याद है कि मनोरमा जब पढ़ती थी तो कोई उससे खुश न था। पढ़ने-लिखनेमें वह बहुत अच्छी न थी। पढ़ने और परीक्षामें पास होनेकी अपेक्षा नयी सहेलियाँ बनाने, मित्रता जोड़नेका उसे शौक था। किसीका कोई काम होता, वह कर देती। कोई सहेली बीमार पड़ती तो उसकी सेवामें सब कुछ भूल जाती। जहाँ कहीं रोता बच्चा देखती, गोदमें उठा लेती और चुमकारती। घरमें होती तो तरह-तरहकी नकल करके सबको हँसा देती। अध्यापिकाओंकी शिकायत थी कि वह पढ़ती नहीं है; पिताका कहना था कि माँने उसे बिगाड़ रखा है और वह व्यर्थ उसकी शिक्षामें इतना खर्च कर रहे हैं। कभी डाँटते-फटकारते, कभी उपदेश करते। कहते—जरा शकुन्तलाको देख। कैसे कायदेसे रहती है, कपड़े-लत्ते, टीमटामसे दुरुस्त। पढ़नेमें सबसे आगे। दो सालसे प्रथम हो रही है। भाषण-प्रतियोगिता 'कप' उसने जीता है। और एक तू है कि थर्ड डिवीजन—तीसरे दर्जेमें किसी तरह आ गयी है। व्यर्थके कामोंमें लगी रहती है—जिनसे तुझे मतलब नहीं, सरोकार नहीं।

पर शकुन्तला शकुन्तला रही और मनोरमा मनोरमा ही रही। दोनों अपने-अपने ढंगपर चलती रहीं। आज दोनोंका विवाह हो चुका है। मनोरमाकी गोदमें एक बच्चा भी है। विवाहके पहले जो पिता कहते थे कि इसका कैसे पार पड़ेगा, आज सुखी और सन्तुष्ट है। दो वर्षमें मनोरमाने न केवल पतिके हृदयपर पूर्ण विजय प्राप्त कर ली है बल्कि ससुरालको, पतिगृहको स्वर्गीय आनन्दसे पूर्ण कर दिया है। उसके आनेके पहले जो गृह सूना-सूना-सा लगता था, आज मानो सजीव हो उठा है। गृहका कोना-कोना उसके हास्यसे मुखरित है। घरकी बड़ी-बूढ़ियाँ उसे पाकर मानो अन्धेकी लाठी पा गयी हैं; मृत्युके निकट होकर भी जीवन स्वादसे भर उठा है। छोटे बच्चे उसे पाकर निहाल हैं। मजाल है कि वह हो और कहीं किसी बच्चेका रोना सुनायी दे! पतिको प्रेम और सेवाका आश्वासन प्राप्त है। गृह व्यवस्थित है। किसीको यह अनुभव नहीं होता कि उसपर अधिक बोझ है। क्योंकि मनोरमा है कि सबका बोझ उठानेको सदा तैयार है; वह यहाँ है, वह वहाँ है, वह मानो एक होकर भी अनेक है और एक जगह होकर भी सब जगह है। कोई उससे अलग होने, दूर रहनेकी कल्पना नहीं कर सकता।

इसके विरुद्ध शकुन्तलाने पढ़नेमें काफी नामवरी पायी। बी०ए० आनर्समें युनिवर्सिटीमें प्रथम रही। बहुत अच्छी जगह उसकी शादी हुई। किंतु पूरा साल भी बीतने न पाया था कि पतिगृहके टुकड़े-टुकड़े हो गये। ससुर माथा पीटकर रह गये, सास लम्बी आह भरती और आँसू बहाती और पति बेचारा, जीवन-संघर्षमें इस आकस्मिक वज्रपातसे किंकर्तव्यविमूढ़! क्या कहता? पर इतना अवश्य सोचता कि सीधे-सादे आनन्दमय जीवनमें यह क्या-से-क्या हो गया। और स्वयं शकुन्तला! अपने कालेजके दिनोंकी याद करती। वे सफलताएँ, वे प्रशंसाएँ, वह सहपाठी सहेलियोंकी करतल-ध्वनि, वह हँसी, वह प्रोफेसरोंका बढ़ावा! सब देकर, सब भूलकर यह जीवन खरीदा और आज सब कुछ नष्ट है। 'हुँ! कोई मेरी परवा न करे तो मैं क्यों किसीकी परवा करूँ।'

ये दो चित्र स्वयं ही अपनी कहानी कहते और अपने नैतिक आधार स्पष्ट कर देते हैं। मनोरमाका स्वभाव विवाहित जीवनमें उसके काम आया। शकुन्तलाकी पढ़ाई कुछ काम न आयी। उलटे उसने एक अस्वाभाविक अहंकारको जन्म दिया और समस्या सुलझनेकी जगह और भी जटिल हो गयी। बात यह है कि विवाहित जीवनका अपना विज्ञान है, इसकी कला ही अलग है।

अक्सर मैंने स्त्रियोंको अपने बीच—जहाँ आशा की जाती है कि कोई पुरुष सुनता नहीं है—यह कहते सुना है—'बहन! सब पुरुष एक-से होते हैं। बड़े बेपीर, अपना मतलब निकालनेमें चतुर। उनके बारेमें यह नहीं कहा जा सकता कि कब क्या करेंगे—ऊँट किस करवट

बैठेगा।' मुझे प्रसन्नता होती यदि मैं इसका समर्थन कर सकता कि पुरुष स्त्रियोंसे अधिक चतुर होते हैं। कैसा ही पढ़ा-लिखा पुरुष हो, गृहस्थ-जीवनमें, व्यवहारमें, वह स्त्रीके आगे बच्चा है। स्त्रियाँ जब काम निकालना चाहती हैं तो पुरुषमें क्या शक्ति है कि उनकी इच्छा-पूर्तिमें बाधक बने। कुछ हँसकर, कुछ रोकर, कुछ गृहको स्वर्ग बनाकर, कुछ नरककी सीमातक जाकर अपना हठा पूरा कर ही लेती हैं। हाँ, कहती सदा यही रहती हैं कि लड़कियाँ परबस हैं।

पर बातें अप्रासंगिक होती जा रही हैं। मैं कहना यह चाहता था कि ज़रा-सी सावधानी और चतुराई, ज़रा-से आत्मनियन्त्रणसे स्त्रियाँ मंगलमयी बन सकती हैं; जरा-सी असावधानीसे वे पिशाची हो जाती हैं। अवश्य ही संसारके व्यस्त जीवनमें मस्तिष्कका, ज्ञानका मूल्य कम नहीं है; पर सहानुभूति तथा प्रेमका मूल्य उससे कहीं अधिक है। इसलिये जो स्त्री प्रेम कर सकती है, गृहमें मधुरताका वातावरण पैदा कर सकती है, वह उस स्त्रीसे, जिसका मस्तिष्क तो बढ़ गया है, पर हृदय बहुत छोटा हो गया है, कहीं अधिक सफल और सुखी होती है। जीवन स्वयं एक समझौता, एक सामंजस्य है। इसलिये जो इसमें जुड़कर रह सकता है, जो जोड़ सकता है, वह जीवनका स्वाद भी अधिक ले सकता है। इसके विरुद्ध जिसमें विभेद है, जो तोड़ता और अलग करता है, उसको जीवनका आनन्द नहीं प्राप्त हो सकता; क्योंकि उसमें जीवनकी विशिष्टता भी नहीं है।

गृहस्थ-जीवनका समस्त सुख स्त्री-पुरुषके गहरे सहयोगपर निर्भर है। इस सहयोगकी नींव जीवनमें जितनी दूरतक गहरी बैठी होगी, दोनों उतना ही सुखी होंगे। जहाँ यह आन्तरिक या हार्दिक सहयोग प्राप्त है, तहाँ कठिनाइयाँ आती हैं और चली जाती हैं; जीवनको दुखी करनेकी जगह उसे ओज और उत्साहसे भर देती हैं। जीवन वसन्तकी तरह न केवल ऊपरसे बल्कि अन्दरसे भी उमड़ा-उमड़ा-सा और अपने प्रति सार्थक होता है। मृत्युका दंश और अन्धकारका आवरण यहाँ व्यर्थ है। खिले पुष्पकी भाँति जीवन परागसे भर गया है।

इसलिये उस स्त्रीके लिये, जिसे विवाद और दलीलकी अपेक्षा कर्तव्य और सुखका बोध अधिक है, मेरी सलाह है कि चाहे किसी भी कीमतपर उसे सबसे पहले पतिका आन्तरिक सहयोग प्राप्त करना चाहिये। उसे पतिके जीवनमें प्रवेश करना चाहिये—पतिके लिये अपनेको अनिवार्य बना लेना चाहिये। यही वह वस्तु है, जो जीवनको प्रकाशसे भर देती है और जिसकी एक मृदुल थपकीसे सम्पूर्ण थकावट दूर हो जाती है।

जब तुमको पतिके प्रति इस आन्तरिक एकताकी अनुभूति होगी तो तुम स्वयं उनके कार्योंमें रस लोगी; उनके प्रति सहानुभूतिसे तुम्हारा हृदय द्रवित रहेगा। कभी तुम्हारी जिह्वापर उनकी निन्दाके शब्द न आयेंगे। एक अमेरिकन महिलाने लिखा है कि 'पति स्त्रीके लिये सर्वदा अच्छा है।' इसका तात्पर्य यह नहीं है कि पतिमें कोई दुर्गुण नहीं होते या वह देवता है; इसका तात्पर्य यही है कि तुम्हें सदा उसके विषयमें अच्छी बातें सोचनी चाहिये, उसके शुभ पक्षको लेना चाहिये। वह बुरा है तो, भला है तो, तुम्हारा है। जो चीज तुम्हें जीवनमें मिली है, उसका सर्वोत्तम उपयोग करना इसकी अपेक्षा कहीं अच्छा है कि उससे अच्छी, पर तुम्हें अप्राप्त वस्तुकी चिन्तामें समय बिताओ। इससे तुम अधिक सुखी होगी।

जो स्त्री गृह-जीवनमें सफल होना चाहती है तथा जिसके हृदयमें पतिके लिये सच्ची सहानुभूति है, वह सदा चेष्टा करेगी कि घर पतिके लिये तथा उसके लिये भी सच्चा सुख-सदन हो, जहाँ जीवनके यात्रा-पथकी थकावट मिट सके और दो घड़ी एकत्र रहकर दोनों अपनी चिन्ताओंको घटा सकें, जहाँ प्रवेश करते हुए प्रसन्नता और उमंगसे हृदय भरा हो। जब पति घर आये, मुसकराती हुई उसका स्वागत करो। ऐसी बातें करो, जिससे उसके हृदयकी कली खिल जाय। दो मीठी बातें, प्रसन्नता और सान्त्वना तथा गहरी सहानुभूतिसे भरे दो शब्द, और सफलता तुम्हारी है; स्वर्ग तुम्हारा है।

यह बात भी याद रखनेकी है कि तुम्हारा पति देवता नहीं है। संसारकी कठिनाइयाँ उसे अस्थिर कर सकती हैं, संघर्षके वातावरणमें उसका भी दम घुटने लग

सकता है। तुम्हारी तरह तुम्हारे पतिमें भी गुण और दुर्गुण दोनों हैं। उससे भी गलतियाँ हो सकती हैं। जीवनमें प्राय: ऐसा होता है कि जब हम कोई गलती करते हैं तब यह माननेको तैयार नहीं होते कि हम गलती कर रहे हैं। माना, पतिने उत्तेजनाके क्षणोंमें या अस्वाभाविक मनोदशामें कोई ऐसी बात कह दी, जो अनुचित है या जिसके विषयमें तुम निर्दोष हो। तर्क तुम्हारे पक्षमें है, औचित्य तुम्हारे पक्षमें है, न्याय तुम्हारे पक्षमें है। तुम यदि पतिकी अनुचित बातोंका प्रतिवाद करो तो कुछ अनुचित न होगा। पर जीवन केवल तर्कोंके बलपर नहीं चलता, वह तर्क और सामान्य आचारसे ऊपर उठकर चलता है। गृहस्थ-जीवनमें न्याय और औचित्य तुम्हारे पक्षमें होते हुए भी उसे व्यक्त करनेकी कला वकीलोंकी बहस करनेकी कलासे भिन्न है। यदि पतिने कोई उत्तेजनापूर्ण बात कह दी और तुमने भी उत्तेजनापूर्ण शब्दोंमें उसका उत्तर दिया तो उत्तेजनापर विजय तो तुम क्या पा सकोगी, उलटे स्वयं उसका शिकार हो जाओगी। उत्तेजनाका उत्तर उत्तेजना नहीं है। कभी विषके घूँट पी जानेसे ही अमृतकी सृष्टि हो जाती है। दो घंटे या दो दिन बाद, शान्ति और सहानुभूतिके क्षणोंमें, यदि तुम पतिदेवका ध्यान उनकी अनुचित बातोंकी ओर आकर्षित करोगी तो वह लज्जित होंगे।

आज स्त्रियाँ पहलेसे अधिक शिक्षित हैं। पुरुषोंमें तो तेजीसे शिक्षाका प्रचार हो रहा है। हर साल हजारों शिक्षित लड़कियों-लड़कोंके विवाह होते हैं, पर बहुत ही कमका जीवन सुखी होता है। घर-घरमें अँधेरा है, घर-घरमें कराह और व्यथा है। शत-शत अभिशप्त गृह अपनी पीड़ा और व्यथाकी मौन, पर लम्बी कथाएँ समाज-जीवनकी विश्रृंखलता और अव्यवस्थाके रूपमें कह रहे हैं। क्या इसका कारण यह है कि ये लड़कियाँ या ये लड़के मानवी गुणोंसे एकदम शून्य हैं? क्या इसका कारण यह है कि उनमें एक-दूसरेके प्रति सहानुभूति अथवा ईमानदारीका नितान्त अभाव है? या क्या वे सुखी होना नहीं चाहते? ऐसी कोई बात नहीं है। उनमें सहानुभूति भी है, वे सुखी करना और सुखी होना भी चाहते हैं; पर उनको उसके कौशल, उसकी कलाका ज्ञान नहीं है। किस स्थानपर किस बातका कैसा प्रयोग करना चाहिये, इसका उन्हें पता नहीं। गृहस्थ-जीवन एक क्रियात्मक, प्रयोगात्मक विज्ञान है। सिद्धान्तोंका ज्ञान यहाँ बस नहीं, उन नियमों और सिद्धान्तोंके उचित उपयोगका ज्ञान ही यहाँ आवश्यक है। अपने जीवनमें बहुसंख्यक युवक-युवतियोंके सम्पर्कमें मैं आया हूँ। उनको प्राय: इस बातसे आश्चर्य होता है कि निर्दोष और कर्तव्यपरायण होते हुए भी क्यों वे अपने जीवन-साथीके साथ सुखी नहीं हैं या क्यों उनका जीवन-साथी उनके साथ सुखी नहीं है। मैं असामान्य उदाहरणोंको छोड़ देता हूँ। एक सामान्य दम्पतीके हृदयमें अवश्य एक-दूसरेके प्रति एक प्राकृतिक आकर्षण होता है, उनमें परस्पर एक झुकाव, एक सहानुभूति, एक निजत्व होता है। दोनोंके शरीरके अन्दरके विशिष्ट तत्त्व—'हार्मोन्स'—स्वयं अपनी अभिव्यक्ति चाहते हैं। उनमें स्वत: मिलनकी प्रेरणा होती है। आवश्यकता इस बातकी है कि इस प्राकृतिक आकर्षण-शक्ति, संयोगकी ओर ले जानेवाली इस प्राकृतिक प्रेरणा और मनोधाराका हम समयपर और कौशलपूर्वक उचित उपयोग करें। शरीर आत्माका विरोधी तत्त्व नहीं, वह आत्माका अधिष्ठान है। उसके संयोगसे आत्मा अपनेको प्रकाशित करती है। इसी प्रकार शारीरिक आकर्षण अधिक गहरे आकर्षणका बाह्यरूप है। यदि हम जीवनकी रचना और व्यवस्थामें इसका ठीक उपयोग कर लेंगे तो इस पृथ्वीपर ही स्वर्गकी सृष्टि कर सकेंगे।

संसारमें बहुत-सा दु:ख और कष्ट केवल इसीलिये पैदा होता है कि जिस समय जो काम करना चाहिये, वह हम नहीं करते या जिस स्थानपर जो चीज होनी चाहिये, नहीं होती। स्थानभ्रष्टता ही दु:खोंका कारण है, वही असौन्दर्यका भी कारण है। यदि हम यह जान लें कि व्यवस्थामें ही सौन्दर्य और सुख है तो जीवनका एक बड़ा मन्त्र हमें ज्ञात हो गया। तुम देखती हो, चित्रकार अन्धकारकी पृष्ठभूमिपर कैसे मनोमोहक चित्र बनाता है। वही रंग बिखरे होते हैं तो कहीं जीवन या सृष्टिके

दर्शन नहीं होते। उन्हींके उपयुक्त सामंजस्यसे जीवन बोलने लगता है, एक नयी सृष्टि होती है। रंगोंका बिखरना ही मृत्यु है, उनका संयोजन ही जीवन या सृष्टि है।

तुम्हारा माली तुम्हारे अध्ययनकक्षमें या बैठनेके कमरेमें प्रायः पुष्पगुच्छ—गुलदस्ता लगा जाता है। यदि तुम्हारे घरमें ऐसी स्थिति नहीं है तो भी तुमने मालीका बना गुलदस्ता देखा ही होगा। कभी-कभी तुम्हीं अपने जूड़ेमें अर्धविकसित सतरंगी कलियाँ गूँथ लेती होगी। गुलदस्ता, जिसमें वे पत्ते भी हैं, जिन्हें कभी तुमने सौन्दर्यके लिये न सराहा होगा, कितना सुन्दर लगता है। पत्तोंके बीच वह गुलाब मानो बोल देगा और जूहीकी कलियाँ मानो हँसना ही चाहती हैं। कमल है कि कोई नववधू अपने प्रियतमके ध्यानमें जैसे आँखें मूँद रही हो। यह सौन्दर्य-सृष्टि केवल व्यवस्थाके कारण है। विविधतामें जब एकरूपताके दर्शन होते हैं, तभी सौन्दर्य और सत्यकी अभिव्यक्ति और अनुभूति होती है। जीवनमें जो विविधता है, वह डरनेकी चीज नहीं है, वह उलटे उपयोगी है। इसलिये कुटुम्बमें जो अनेक प्रकारके लोग रहते हैं, जो अनेक प्रकारकी रुचियाँ और प्रवृत्तियाँ दिखायी देती हैं, उनसे भीत वही नारी है, जिसने जीवनका ठीक स्वरूप न जाना, न समझा हो। माना, इस विविधतासे तुम्हारे कार्य बढ़ जायँगे, तुम्हारी चिन्ताएँ बढ़ जायँगी; पर यदि तुम चतुर हो तो उस विविधताका भी समुचित उपयोग कर लोगी, उनसे एक सुन्दर सृष्टि कर लोगी। जीवनमें यही चीज सबसे कठिन मालूम होती है, विविध सम्बन्धोंका सामंजस्य। पर थोड़ी उदारता, थोड़ा कौशल, थोड़ी सहानुभूति और उच्च मानसभूमिकासे ये कठिनाइयाँ दूर हो जाती हैं और जीवनका पथ सरल एवं सुखद हो जाता है।

मैंने ऐसी स्त्रियोंको देखा है, जिन्होंने अपने व्यवहार और शीलसे अत्यन्त कट्टर और क्रोधी ससुरोंको पानी कर दिया है तथा प्रतिकूल और कर्कशा सासोंका आशीर्वाद एवं स्नेह प्राप्त किया है। मनुष्यके आचार-विचार जैसे भी हों, उसके हृदयमें प्रेमका गुप्त स्रोत अवश्य होता है। यदि तुम उसके हृदयमें प्रवेश करके उसका ढक्कन खोल दो तो फिर जहाँ कटुता और रूक्षता दिखायी देती थी, वहाँ तुम्हें मृदुता और सरसताके दर्शन होने लगेंगे। जहाँतक घरके बड़े-बूढ़ोंका सवाल है, वे इतना ही चाहते हैं कि नयी पीढ़ी उनका सम्मान करे। इसलिये थोड़े-से विनय और सेवा, ज़रासे कौशलसे तुम सहज ही उनका हृदय जीत सकती हो, कम-से-कम उन्हें अनुकूल कर ले सकती हो।

वह नारी धन्य है, जो पतिप्राणा होते हुए भी गृहके सब लोगोंका ख्याल रखती है। उसे पतिका प्रेम, सास-ससुरका आशीर्वाद, जेठानियोंका अनुराग, देवरोंका आदर तथा नौकरोंकी निष्ठा—सब प्राप्त है। जैसे शरीरमें हृदय है, वैसे ही समस्त गृहमें उसकी प्रतिध्वनि है। वह सबमें व्याप्त है। उसपर निरन्तर कल्याणकी वर्षा होती है। वह गृहका दीपक है, वह कल्याणी है, वह मंगलमयी है।

नारी!

(श्रीगयाप्रसादजी द्विवेदी 'प्रसाद')

नारी! तुम नर-मन-मधुप मधुर गुञ्जन-सी,
जीवन मधु-ऋतुकी ललित कलित-कुञ्जन-सी।
तुम अवनीकी छबि, अतुल प्रभा कन-कनकी,
श्वासोंकी सुखमय सुरभि, सुखी जीवन-सी॥ १॥

तुम नभकी निर्मल कान्ति, शान्ति उडुगणकी,
रजनीकी मुद्रामूक, कला शशि-तनकी।
तुम प्रातभानुकी किरण, जलजकी शोभा,
नव बकुल मुकुल-सी मृदुल सरस मधुवन-सी॥ २॥

तुम त्रिगुणा त्रिविध स्वरूप धारिणी धन्या,
जग-जननी, तुम सुखमयी नारि, नर-कन्या।
तन तरणी सम्बल एक तुम्हारी छाया,
तुम सृष्टि-स्थिति-संहार-करण-कारण-सी॥ ३॥

तुम इन्द्रदेवकी शची, रमा श्रीहरिकी,
शङ्करकी शक्ति अनूप, धार-सुरसरिकी।
अयि! ब्रह्माकी ब्रह्माणि, ब्रह्मकी माया,
तुम प्राणिमात्रकी सकल सिद्धि-साधन-सी॥ ४॥

'मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः'

(विद्यावाचस्पति डॉ० श्रीदिनेशचन्द्रजी उपाध्याय, एम०एस-सी० (कृषि), पी-एच०डी०)

सार्थक एवं सफल मानव जीवनकी पहचान क्या है? भगवान् रामकी इस जिज्ञासाका समाधान महर्षि वसिष्ठने एकश्लोकी योगवासिष्ठमें इस प्रकार किया है कि राम! प्राणशक्ति और अन्तःकरण क्रिया तो मानव-पशु-पक्षी सबमें समान है, परंतु मननशक्ति होनेके कारण ही मनुष्य 'मानव' कहलाता है।

तरवोऽपि हि जीवन्ति जीवन्ति मृगपक्षिणः।
स जीवति मनो यस्य मननेवोपजीवति॥

महर्षि यास्कने भी अपने निरुक्तमें **'मत्वा कर्माणि सीव्यन्ति इति मनुष्यः'** द्वारा उक्तकी पुष्टि की है, अर्थात् विचारपूर्वक जीवन-यापन करनेवाला ही मनुष्य है।

संस्कृत वाङ्मयमें मनका अत्यन्त सूक्ष्म विवेचन किया गया है। भागवतमें 'मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार' रूपी मनके चार भेद बतलाये गये हैं। योगवासिष्ठ उत्पत्ति-प्रकरण अध्याय ९६ के अनुसार सर्वशक्तिमान्, असीम महान् विज्ञानानन्दघन परमात्मतत्त्वकी शक्तिका जो संकल्पमयरूप है, वही मन है और सम्पूर्ण जगत् मनका ही कार्य है।

गीता (१०।२०)-में भगवान्ने **'इन्द्रियाणां मनश्चास्मि'** कहकर इन्द्रियोंमें मनको अपना स्वरूप बताया है।

महर्षि पतंजलिने सत्त्व, रज और तमके परिणाम-स्वरूप चित्तकी पाँच अवस्थाएँ बतलायी है—१. मूढ़, २. क्षिप्त, ३. विक्षिप्त, ४. एकाग्र और ५. निरुद्ध। योगदर्शन (१।२-३)-में महर्षिने चित्तवृत्तिनिरोधको ही योग तथा उसके परिणामको परमात्माकी प्राप्ति बतलाया है—

योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः ॥ तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्॥

मनका लक्षण—ज्ञानका होना और न होना मनका लक्षण है। आत्मा, इन्द्रिय और विषयोंका मनसे सम्पर्क होनेसे ही विषयज्ञान होता है और मनसे सम्पर्क न होनेसे विषयज्ञान नहीं होता है अर्थात् ज्ञानोत्पत्तिमें मन सेतुका कार्य करता है। मनका इन्द्रियोंके साथ सम्पर्क होते ही इन्द्रियाँ विषयोंको ग्रहण करती हैं। वैशेषिक दर्शन (३।२।१)-में भी मनकी सिद्धिके लिये ऐसे ही विचार मिलते हैं—

आत्मेन्द्रियार्थसन्निकर्षे ज्ञानस्य भावोऽभावश्च मनसो लिङ्गम्।

महर्षि चरकने इन्द्रियसहित शरीर और मनको वेदनाका अधिष्ठान तथा मोक्षको वेदनाओंका नाश बतलाया है। योगवासिष्ठके निर्वाण-प्रकरण उत्तरार्धके अध्याय ३६ में भी इच्छाको बन्धन तथा इच्छा-त्यागको मुक्ति बतलाया गया है।

मनके कार्य—इन्द्रियोंके साथ सम्पर्क करके विषयोंको ग्रहण करना, इन्द्रियों तथा शरीरको नियन्त्रित करना, अपने आपको नियन्त्रित करना, विचार और ध्यान करना तथा चिन्तन-मनन करना मनके कार्य हैं। भगवान् चरकने प्राकृत और विकृत मनके दो प्रकार बतलाये हैं। सतोगुणी पुरुषके जो-जो लक्षण हैं, वे सब प्राकृत मनके कार्य हैं तथा काम, क्रोध अभिमान, मोह, मत्सर, ईर्ष्या, भय, चिन्ता आदि विकृत मनके कार्य हैं और यही मानसरोगके भी कारण हैं। अब प्रश्न उठता है कि मानस रोग क्या हैं? गरुडजीकी इसी जिज्ञासाका सम्यक् उत्तर मानसमें काकभुशुण्डिजी देते हुए कहते हैं कि मोह या अज्ञान सभी मानस-रोगोंकी जड़ है, जिससे विविध कष्ट प्राप्त होते हैं। काम, क्रोध, लोभ क्रमशः वात, पित्त, कफ हैं, इनके मिल जानेसे भयंकर सन्निपात उत्पन्न होता है। ममता दाद है तो ईर्ष्या खुजली है। ऐसे ही हर्ष-विषाद कण्ठमाला, घेघा आदि गलेके रोग हैं, तो क्षयरोग है दूसरेके सुखसे उत्पन्न जलन। मनकी कुटिलता कोढ़ है तो अहंकार कैंसररूपी गाँठ है। दम्भ, कपट, मद और मान नसोंके रोग हैं, तो तृष्णा उदरवृद्धि और तीन प्रकारकी एषणाएँ तिजारी है। मत्सर एवं अविवेक दो प्रकारके ज्वर हैं, इनमेंसे एक ही रोग मारक क्षमता रखता है तो विविध मानसिक रोगोंवाले मनुष्यको

शान्ति कैसे मिल सकती है?[१]

श्रीमद्भागवत (३। २५। १)-में भगवान् कपिलने कहा है कि इस जीवके बन्धन और मोक्षका कारण मन ही है; विषयासक्त मन बन्धनका हेतु है और परमात्मामें अनुरक्त होनेपर यही मन मोक्षका कारण बन जाता है—

चेतः खल्वस्य बन्धाय मुक्तये चात्मनो मतम्।
गुणेषु सक्तं बन्धाय रतं वा पुंसि मुक्तये॥

प्रकारान्तरसे यही बात अमृतबिन्दूपनिषद्[२] तथा मैत्राण्युपनिषद्[३] भी कही गयी है। शाट्यायनीयोपनिषद्० १ में कहा गया है कि मन बन्धन एवं मोक्षका कारण है तथा मनके चलाये संसार है और निश्चल कियेपर मोक्ष—

मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः।
चित्ते चलति संसारो निश्चले मोक्ष उच्यते॥

मनका दुरूह स्वरूप—मनका स्वरूप अत्यन्त दुरूह है, तभी तो भगवान् श्रीकृष्णने इसे चंचल और कठिनतासे वशमें होनेवाला बतलाया है—'**असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम्।**' (गीता ६। ३५)

श्रीमद्भागवतमें शुकदेवजी कहते हैं कि जैसे व्यभिचारिणी स्त्री अपनेपर विश्वास करनेवाले पतिको धोखा देती है, वैसे ही मन भी अपनेपर विश्वास करनेवाले योगीको अपने अन्दर काम और उसके पीछे रहनेवाले क्रोध आदिको अवकाश देकर धोखा देता है।[४]

गीता (६। ६)-के अनुसार भगवान् श्रीकृष्णका स्पष्ट मत है कि मन और इन्द्रियोंको जीतनेवाला स्वयंका मित्र परंतु उच्छृंखल मन-इन्द्रियोंवाला स्वयं अपना शत्रु होता है।[५] जिसके अन्तःकरणकी वृत्तियाँ शान्त हैं तथा जो समदर्शी है, ऐसे शान्त मनवाला ही भगवत्प्राप्त है।

गीता (६। २४-२५)-के अनुसार संकल्पसे उत्पन्न सम्पूर्ण कामनाओंको त्यागकर मन एवं इन्द्रियोंको सभी ओरसे रोककर परमात्मचिन्तन करनेसे ही शान्ति मिलती है। संकल्प ही काम है, तभी तो महाभारत शान्तिपर्व (१७७। २५)-में महर्षि मंकि कामको चुनौती देते हुए कहते हैं कि 'मैं तुम्हारे मूलको जानता हूँ, तुम संकल्पसे उत्पन्न हुए हो और मैं संकल्प ही नहीं करूँगा तो तुम उत्पन्न कैसे होगे'—

काम जानामि ते मूलं सङ्कल्पात् किल जायसे।
न त्वां संकल्पयिष्यामि समूलो न भविष्यसि॥

बृहदारण्यकका वचन है कि मनुष्य-जैसी कामनावाला होता है, वैसा निश्चयवाला होता है और तदनुसार ही कर्म करता है, अतः हमें शिवसंकल्प ही करना चाहिये।[६] भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं कि '**सर्वसङ्कल्पसंन्यासी योगारूढस्तदोच्यते।**' (गीता ६। ४) अर्थात् सर्वसंकल्पत्यागी ही योगारूढ़ है, यहाँ योगारूढ़से तात्पर्य अनासक्त कर्म करते हुए

---

१. सुनहु तात अब मानस रोगा। जिन्ह ते दुख पावहिं सब लोगा॥
मोह सकल ब्याधिन्ह कर मूला। तिन्ह ते पुनि उपजहिं बहु सूला॥
काम बात कफ लोभ अपारा। क्रोध पित्त नित छाती जारा॥
प्रीति करहिं जौं तीनिउ भाई। उपजइ सन्यपात दुखदाई॥
बिषय मनोरथ दुर्गम नाना। ते सब सूल नाम को जाना॥
ममता दादु कंडु इरषाई। हरष बिषाद गरह बहुताई॥
पर सुख देखि जरनि सोइ छई। कुष्ट दुष्टता मन कुटिलई॥
अहंकार अति दुखद डमरुआ। दंभ कपट मद मान नेहरुआ॥
तृस्ना उदरबृद्धि अति भारी। त्रिबिधि ईषना तरुन तिजारी॥
जुग बिधि ज्वर मत्सर अबिबेका। कहँ लगि कहौं कुरोग अनेका॥ (रा०च०मा० ७। १२१। २८—३७)

२. विषयासक्त मन बन्धका और निर्विषय मन मोक्षका कारण है ('बन्धाय विषयासक्तं मुक्त्यै निर्विषयं स्मृतम्।') तथा हृदयमें मनका तबतक निरोध करना चाहिये, जबतक उसका क्षय न हो जाय; यही ज्ञान और ध्यान है, शेष तो न्यायका विस्तार है—
तावदेव निरोद्धव्यं यावत् हृदिगतं क्षयम्। एतज्ज्ञानं च ध्यानं च शेषो न्यायस्य विस्तरः॥ (अमृतबिन्दूपनिषद् ५)

३. मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः। बन्धाय विषयासक्तं मुक्त्यै निर्विषयं स्मृतम्॥ (मैत्रा० ४। ११)

४. नित्यं ददाति कामस्यच्छिद्रं तमनु येऽरयः। योगिनः कृतमैत्रस्य पत्युर्जायेव पुंश्चली॥ (श्रीमद्भा० ५। ६। ४)

५. बन्धुरात्मात्मनस्तस्य येनात्मैवात्मना जितः। आत्मनस्तु शत्रुत्वे वर्तेतात्मैव शत्रुवत्॥ (गीता ६। ५)

६. स यथाकामो भवति तत्क्रतुर्भवति यत्क्रतुर्भवति तत् कर्म कुरुते॥ (बृहदारण्यकोपनिषद् ४। ४। ५)

भगवच्छरणागति है।

मनोविकार दूर करनेके उपाय—चिन्तन-मनन दु:खका कारण एवं इच्छात्याग ही वैराग्य है। सुखी मनुष्योंसे मैत्री-भावना, दुखीसे करुणा, पुण्यात्माओंसे प्रसन्नताकी भावना और पापियोंसे उपेक्षाकी भावना चित्तके मैलको दूर करती है, यह बात योगदर्शन[1] और चरकसंहिता[2] दोनोंमें कही गयी है। महर्षि चरकका कथन है कि इच्छात्याग ही दु:खनिवृत्तिका मार्ग है, जैसे रेशमका कीड़ा अपने आपको स्वयं फँसाता है, उसी प्रकार विषयोंमें फँसा मनुष्य स्वयंको नष्ट कर लेता है, जबकि निष्कामकर्म बाधक नहीं होता है। (चरक० शारीर० १।३१)

आचार्य चरकके अनुसार सज्जनोंकी सेवा, दुर्जनोंका त्याग, शास्त्रोपदिष्ट विविधकर्म, धर्मशास्त्र-अध्ययन, आत्मज्ञानमें रुचि, विषयोंसे अनासक्ति, एकान्तप्रियता, धैर्य धारण करना, नये कर्मोंद्वारा फलप्राप्तिरूपी बन्धनमें न फँसना, पूर्वकृत कर्मक्षयका उपाय करना, निष्काम कर्म करना, पुनर्जन्मका भय तथा मन-बुद्धिको आत्मासे जोड़ना मनोविकार दूर करनेके उपाय हैं।

मनको शान्त करनेके उपाय—योगवासिष्ठमें कहा गया है कि बिना उचित युक्तिके मनको जीतना कठिन है, जो बिना युक्तिके मनको जीतना चाहते हैं, उन्हें अनेक क्लेश एवं भय प्राप्त होते हैं। मनके नियन्त्रण हेतु योगवासिष्ठ निर्दिष्ट कतिपय उपाय यहाँ दिये जा रहे हैं—

१. ज्ञानद्वारा मनका निरोध—मनकी सत्ता ही अज्ञानका कारण है, जिसे आत्मज्ञानद्वारा नष्ट किया जा सकता है।

२. संकल्पत्याग—योगवासिष्ठ निर्वाण-प्रकरण (उत्तरार्ध)-के अध्याय १२६ के अनुसार वासना, इच्छा, मनन, चिन्तन, संकल्प, भावना और स्पृहा नामवाली हथिनी मनुष्यके अन्त:करणमें रहकर उसे मारती है, जिसे धैर्य नामक हथियारसे मारना चाहिये।

३. भोगोंसे विरक्ति—योगवासिष्ठ उपशम-प्रकरणके अध्याय २४ के अनुसार बिना भोगोंसे विरक्त हुए मनको शान्ति नहीं मिलती है।

४. वासना-त्याग—पहले तामसी वासनाओंका त्याग करके मनमें मैत्री आदि शुभ भावनाएँ रखे, फिर उनके अनुसार व्यवहार करता हुआ उसको भी मनसे निकालकर वासनारहित होकर चिन्मात्रावस्थाको प्राप्त करना चाहिये। (स्थिति-प्रकरण, अध्याय ५७)

५. अहंभावका नाश—चित्तसे मैं और मैंपनाका भाव हटाकर समताका प्रकाश लाया जाय तो अहंभावका नाश हो जाता है। (स्थितिप्रकरण, अध्याय ३३)

६. संगका अभाव—केवल देह ही आत्मा है, ऐसी भावनासे उत्पन्न देहाभिमान ही संग है और वही बन्धनका हेतु कहा जाता है। (उपशम-प्रकरण, अध्याय ६८)

७. कर्तृत्वभावका अभाव।

८. सर्वत्याग—सबकुछ त्याग करनेपर जो शेष रह जाता है, वही आत्मा है। (योगवा० ५२।५८।४४)

९. समाधिका अभ्यास, लयक्रिया, सद्ग्रन्थ-अध्ययन एवं श्वासके द्वारा नामजपका अभ्यास आदि।

अन्तमें संत कबीरदासका यह निर्देश विचारणीय है कि बिना मनके नियन्त्रणके जप-तप आदि व्यर्थ है, अत: पहले मनको उचित मार्गमें निर्दिष्ट करें—

माला फेरत जुग गया फिरा न मन का फेर।
करका मनका डारि दे मन का मनका फेर॥

अत: हमें **'शमो विचार: सन्तोषश्चतुर्थ: साधुसङ्गमः।'** योगवासिष्ठ (२।११।५९) तथा **सन्तोष: साधुसङ्गश्च विचारोऽथ शमस्तथा** (२।१६।१८)-के अनुसार शम, संतोष, सत्संगति और विचारपूर्वक मनको कल्याणकारी बनाना चाहिये और यही आदेश/प्रार्थना हमें यजुर्वेद (३१।१)-में भी प्राप्त है—

'तन्मे मन: शिवसङ्कल्पमस्तु।'

---

१. मैत्रीकरुणामुदितोपेक्षाणां सुखदु:खपुण्यापुण्यविषयाणां भावनातश्चित्तप्रसादनम्। (यो०द० १।३३)

२. मैत्री कारुण्यमार्तेषु शक्ये प्रीतिरुपेक्षणम्। प्रकृतिस्थेषु भूतेषु वैद्यवृत्तिश्चतुर्विधा॥ (च०सू० ९।२६)

बोधकथा—

नाम-सिद्धि

(श्रीमहावीरसिंहजी 'यदुवंशी')

पूर्व समयमें तक्षशिलामें बोधिसत्व नामक एक अत्यन्त विख्यात आचार्य हुए। वे पाँच सौ शिष्योंको पढ़ाते थे। उनके एक शिष्यका नाम था 'पापक'। लोग उसे 'पापक' कहकर पुकारते थे—'पापक! आ, पापक! जा' आदि।

उसने सोचा—दुनियामें 'पापक' नाम बहुत खराब है, मनहूस है। मैं दूसरा अच्छा नाम रखवाऊँ। यह सोचकर वह आचार्यके पास गया, और बोला, 'आचार्य! मेरा नाम अमांगलिक है, मुझे दूसरा नाम दें।' आचार्यने उत्तर दिया—'तात! नाम बुलानेभरको है। नामसे कोई अर्थसिद्धि नहीं होती। जो तेरा नाम है, उसीसे संतुष्ट रह।'

आचार्यके बार-बार समझानेपर भी उसने नाम बदलनेका ही आग्रह किया। तब आचार्यने कहा—'तात! जा, देशमें घूमकर जो तुझे अच्छा लगे, ऐसा एक मांगलिक नाम ढूँढ़कर ला। आनेपर तेरा नाम बदल दूँगा।'

'अच्छा' कहकर वह रास्तेके लिए खुराकी लेकर आश्रमसे निकल पड़ा। एक गाँवसे दूसरे गाँवतक घूमता हुआ वह एक नगरमें पहुँचा। वहाँ 'जीवक' नामका एक आदमी मर गया था। उसके रिश्तेदार उसे जलानेके लिये ले जा रहे थे। 'पापक' ने पूछा—इसका क्या नाम था? 'इसका नाम जीवक था'—किसी आदमीने उत्तर दिया।

'क्या जीवक भी मरता है?'

'जीवक भी मरता है, अजीवक भी। नाम पुकारनेभरको होता है। मालूम होता है, तू मूर्ख है।'

यह सुनकर 'पापक' नामके प्रति कुछ उदासीन हो गया। वह और आगे बढ़ा। वहाँ एक दासीको उसके मालिक दरवाजेपर बिठाकर पीट रहे थे। वह काम करके मजदूरी नहीं ला पा रही थी (पूर्व समयमें लोग दासियोंको रखकर उनसे मजदूरी करवाते थे)। उस दासीका नाम था 'धनपाली'। 'पापक' ने गलीमें-से गुजरते हुए उसे पिटते देखकर पूछा—'इसे क्यों पीट रहे हैं?'

'यह मजदूरी नहीं ला पा रही है।'

'इसका क्या नाम है?'

इसका नाम है—धनपाली।

नामसे तो धनपाली है, तो भी मजदूरीमात्र भी नहीं ला पा रही है।'

'धनपाली भी दरिद्र होती है, अधनपाली भी। नाम बुलानेभरको होता है, मालूम होता है, तू मूर्ख है।'

वह नामके प्रति कुछ और उदासीन होकर नगरसे निकला। रास्तेमें उसने एक आदमीको देखा, जो रो रहा था। उसने उससे पूछा—तुम क्यों रो रहे हो?

'मैं रास्ता भूल गया हूँ।'

'तुम्हारा नाम क्या है?'

'पन्थक।'

'पन्थक भी रास्ता भूलते हैं?'

'पन्थक भी भूलते हैं, अपन्थक भी। नाम पुकारनेभरके लिये होता है। मालूम होता है, तू मूर्ख है।'

अब तो वह नामके प्रति बिलकुल उदासीन होकर बोधिसत्वके पास गया। बोधिसत्वने पूछा—'क्यों तात! अपनी रुचिका नाम ढूँढ़ लाये?'

वह बोला—'आचार्य! जीवक भी मरते हैं, अजीवक भी। धनपाली भी दरिद्र होती है, अधनपाली भी। पन्थक भी रास्ता भूलते हैं, अपन्थक भी रास्ता भूलते हैं। नाम बुलानेभरको होता है। नामसे सिद्धि नहीं होती,कर्मसे सिद्धि होती है। कर्मसे ही मनुष्य महान् बन जाता है, और कर्मसे ही नष्ट हो जाता है। मुझे दूसरे नामकी जरूरत नहीं है। मेरा जो नाम है, वही रहने दें।' यह कहकर पापक बोधिसत्वके चरणोंमें गिर पड़ा।

मनुष्य स्वयं ही रोग और मृत्युका मूल कारण

(डॉ० श्री जी० डी० बारचे)

यह एक शाश्वत प्रश्न रहा है और रहेगा कि आखिर मनुष्यको रोग क्यों होते हैं? उसकी मृत्यु क्यों होती है? भगवान् बुद्धको भी इन्हीं प्रश्नोंने घर-बार छोड़कर इनके उत्तर पानेहेतु प्रवृत्त किया। इन्हीं प्रश्नोंने लुईपाश्चर-जैसे फ्रेंच वैज्ञानिकको शोध-कार्यमें लगाया। तात्पर्य यह कि इन प्रश्नोंने ऋषियों, मुनियों, वैज्ञानिकों ही नहीं सामान्य लोगोंको भी झकझोरा है, उन्हें विचार करनेको बाध्य किया है, किसी निष्कर्षपर आनेहेतु प्रोत्साहित किया है। परन्तु शोकान्तिका यह रही है कि इस विषयमें आजतक जितना अधिक चिन्तन हुआ, इन प्रश्नोंके उत्तर क्षितिजकी तरह दूर सरकते गये। ऐसे क्षणोंमें महर्षि वेदव्यासके भगवद्गीतामें व्यक्त विचार ही मदद कर सकते हैं: '**कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन्।**' अर्थात् मनुष्यका अधिकार कर्म करनेपर है, फलपर नहीं। इन्हीं शब्दोंके आधारसे इस लेखके द्वारा इन प्रश्नोंपर पुनः चिन्तनके द्वारा कुछ दिशा पानेहेतु प्रयत्न किया जा रहा है—

मनुष्य रोगग्रस्त होता है और मरता भी है—यह सत्य है। १९ फरवरी २०१५ की बात है, छः सौ-से अधिक लोग स्वाइन फ्लू नामक रोगसे ग्रस्त होकर मर गये। अब प्रश्न यह उठता है कि इतने लोग इस रोगसे ग्रस्त होकर क्यों मर गये? और बाकी लोग इससे क्यों अप्रभावित रहे? ये प्रश्न चिन्तनोपरान्त कुछ आधारभूत तथ्योंकी ओर इशारा करते हैं। प्रथमतः तो हमें महर्षि वेदव्यासके निम्न कथनकी ओर देखना होगा—

आत्मानं वै प्राणिनो घ्नन्ति सर्वे
नैतान मृत्युर्दण्डपाणिर्हिनस्ति।

अर्थात् सब प्राणी स्वयं ही अपने आपको मारते हैं। मृत्यु हाथमें डंडा लेकर इनका वध नहीं करती। स्वाभाविक ही प्रश्न उठता है कि स्वयं प्राणी अपने-आपको क्यों व कैसे मार सकता है? किंवा स्वाइन फ्लू या कैंसर भी किसीको अकारण क्यों ग्रसित करके मारेगा? निरीक्षणसे यह स्पष्ट होता है कि इस विश्वमें दो चक्र निरंतर गतिमान हैं—पहला प्रकृतिका चक्र, जो दिवस-रात्रि, महीने, वर्ष, ऋतुओं तथा जन्म-वृद्धि-मृत्युके शाश्वत नियमोंसे बँधकर चला आ रहा हैं; और दूसरा मानवी जीवनचक्र जो लोगोंने अपनी समझ, सूझबूझके अनुसार आहार, निद्रा, भय, मैथुन इत्यादिसे बाँध रखा है। सूक्ष्म चिन्तनसे यह दिखता है कि इन दोनों चक्रोंमें जितना अधिक ताल-मेल होगा, सामंजस्य होगा, उतना मानव-जीवन स्वस्थ और कल्याणकारी होगा। इसके विरुद्ध इन दोनोंमें जितनी दूरी होगी, उतना ही मानव-जीवन रुग्ण एवं अस्थिर होगा। महर्षि व्यासने भी महाभारतमें यह सत्य '**मिथ्यावृत्तान् मारयिष्यति अधर्मः।**' अर्थात् मिथ्याचारी लोगोंको तो उनका अधर्म ही मार डालेगा, इन शब्दोंमें व्यक्त किया है।

अब जानना होगा कि यह '**मिथ्यावृत्तान्**' क्या है? जब मानवीय जीवनचक्र या जीवन-पद्धति प्रकृतिके जीवनचक्रके अनुरूप न होकर विरुद्ध या प्रतिकूल होती है, तब यह 'मिथ्या वर्तन' होगा और यही मिथ्या वर्तन अर्थात् यही प्रकृति एवं मनुष्यके जीवन-चक्रोंमें विरोध ही मनुष्यके रोगों व अकाल मृत्युका कारण बनता है। उदाहरणार्थ, हमारे पूर्वज ऋषि सुश्रुतने निद्राके बारेमें निम्न बात बतायी है—

पुष्टिं वर्णं बलोत्साहं अग्निदीप्तिमतन्द्रिताम्।
करोति धातुसाम्यं च निद्रा काले निषेविता॥

अर्थात् यथासमय सेवित निद्रा पुष्टि, सौन्दर्य, बल, उत्साह, अग्निदीप्ति, श्रमपरिहार और धातुसाम्य करती है। प्रकृतिने दिन-रात्रिका नियोजन किया है। संकेत यही है कि रात्रिमें मनुष्य सोये, विश्राम करे और अगले दिनमें कर्मके लिये तैयार हो जाय। यहाँ यह भी कहा गया है कि 'यथासमय सेवित निद्रा' से ही इतने लाभ होंगे; कभी भी सोनेसे नहीं। अब 'यथासमय' याने क्या? हम देखते हैं

कि सूर्यास्तके घंटे-दो घंटे बाद सभी पशु-पक्षी, और पेड़-पौधे सो जाते हैं तथा सूर्योदयके एक-दो घंटे पूर्व जाग जाते हैं। यह इस बातका संकेत है कि मनुष्यको भी सूर्यास्तके बाद ९-१० बजेतक सो जाना चाहिये और प्रातः ४-५ बजेतक उठ जाना चाहिये। इसके विपरीत आज हम देखते हैं कि मनुष्य कभी भी सोता है, कभी भी उठता है। स्पष्ट है कि आज मनुष्य प्रकृतिके संकेतोंकी ओर पूरी तरहसे अनदेखी कर रहा है। और इस गलतीके परिणाम हैं रोग एवं अकाल मृत्यु, जो मनुष्यको भोगने पड़ रहे हैं।

इसी प्रकार प्रकृतिके ज्ञाता चरक कहते हैं; '**देह-वृत्तौ तथाऽऽहारः तथा स्वप्नः सुखो मतः।**' अर्थात् शरीरको जैसा आहार मिलेगा; उसी प्रमाणमें सुखकारक निद्रा मिलेगी। विज्ञानने यह बता दिया है कि मनुष्यका रक्त ३०% एसिडिक व ७०% अल्कलाइन है। अतः इसके अनुसार व्यक्तिका भोजन भी होना चाहिये अर्थात् ३०% अम्लीय अर्थात् एकदल धान्य, द्विदल धान्य,तेल, घी इत्यादि तथा ७०% क्षारीय अर्थात् सब्जियाँ एवं फल। आजकी जीवन-पद्धतिमें इन सामान्य बातोंकी ओर पूरी तरहसे अनदेखी हो रही है। आजके मानवीय आहारमें अम्लीयताका ही प्राधान्य है। किसी भी व्यक्तिका बीमार होना, उसका प्रकृतिके नियमोंके प्रति अज्ञानताको ही दिखाता है और इस दृष्टिसे वह स्वयं ही रोग व अकाल मृत्युका कारण है।

महाभारतमें एक कथा आती है, जिसमें मृत्युकी उत्पत्ति और उसके द्वारा मनुष्योंके मरणका वर्णन आता है।

ब्रह्माजीने जब सृष्टिका निर्माण करना प्रारम्भ किया तो सृष्टि बढ़ती गयी। उस समय संहारकी कोई व्यवस्था नहीं थी। तब ब्रह्माजीने एक 'नारी' को जन्म दिया, जिसका नाम रखा 'मृत्यु।' ब्रह्माजीने 'मृत्यु' से कहा कि उसका काम लोगोंको मारना और सृष्टिके फैलावको रोकना है, पर मृत्युरूप नारी लोगोंको मारनेका पाप करनेको तैयार नहीं हुई। तब ब्रह्माजीने इस जटिल समस्याका समाधान करते हुए उसके निम्नलिखित वचनोंका अनुमोदन करते हुए उससे कहा—

लोभः क्रोधोऽभ्यसूयेर्ष्या द्रोहो मोहश्च देहिनाम्॥
अह्रीश्चान्योन्यपरुषा देहं भिन्द्युः पृथग्विधाः।

ब्रह्माजीने मृत्युको कहा कि उसे प्रत्यक्ष किसीको मारनेका पाप नहीं करना है; क्योंकि लोभ, क्रोध, असूया, ईर्ष्या, द्रोह (दुर्भावना), मोह, निर्लज्जता और एक-दूसरेके प्रति कही हुई कठोर वाणी—ये विभिन्न दोष ही देहधारियोंकी देहका भेदन करेंगे। चरकसंहितामें भी ऐसा ही उल्लेख है—

ईर्ष्याशोकभयक्रोधमानद्वेषादयश्च ये।
मनोविकारास्तेऽप्युक्ताः सर्वे प्रज्ञापराधजाः॥

अर्थात् ईर्ष्या, शोक, भय, क्रोध, मान-अपमान और राग-द्वेष—ये सब मनके विकार हैं, जो बुद्धिके अपराधसे उत्पन्न होते हैं और दिनचर्यामें शामिल हो जानेपर ये घटक रोग व मृत्युके कारण होते हैं।

एक बार पुनः मूल प्रश्नको देखें कि क्या मनुष्य 'रोगों व मृत्यु' के कारण मरता है? या फिर वह स्वयं उन्हें आमन्त्रित करता है? अब यदि हम सतही स्तरपर देखें तो दिखायी देता है कि लोग स्वाइन फ्लू, डेंगू, कॉलरा, मलेरिया, कैंसर, एच०आई०वी० इत्यादि रोगोंसे ग्रसित होकर मर रहे हैं। परंतु हम जब समस्याके मूलको देखते हैं तो महर्षि वेदव्यासके उपर्युक्त श्लोकमें उल्लिखित घटक ही मनुष्यके रोगों एवं मृत्युके लिये जिम्मेदार हैं।

यह उचित होगा कि इस सत्यको हम प्रत्यक्ष उदाहरणोंके प्रकाशमें देखें—

एक नवयुवक स्वाइन फ्लूसे मरा। परंतु स्वाइन फ्लू तो ऊपरी कारण बना, पर सही कारण था उसका 'लोभ व मोह'। वह युवक सहायक अभियंता था। सरकारी कॉन्स्ट्रक्शनके कार्योंका निरीक्षण करता था। उसका कार्यक्षेत्र बहुत फैला हुआ था। वह रोज ७०-८० कि०मी० बाइकसे जाता-आता था। कई बार बारिशमें वह भींग जाता था। उसे कोष्ठबद्धता थी। हमेशा सर्दी-जुकाम होता था। रोगसे ग्रस्त होनेके समय भी वह बारिशमें भींगा था। उसे सर्दीसे बुखार भी था। इतनेपर भी वह लोकल डॉक्टरसे औषधि लेकर अपनी धुनमें रहता था। उसने कल्पना भी नहीं की थी कि बीमारीके जिन लक्षणोंसे वह ग्रस्त है, वे उसे स्वाइन फ्लू और मृत्युके मुँहमें ढकेल देंगे। रोगके लक्षणोंके बावजूद उसने कॉन्स्ट्रक्शन साइट्सपर बाइकसे जाना जारी रखा; मोह था, लोभ था पैसोंका। यद्यपि उसने अपनी आर्थिक स्थिति अच्छी बना ली थी, पर उसे और सम्पत्ति चाहिये थी। उसने शरीरकी माँगों, शिकायतोंकी ओर कभी ध्यान ही नहीं दिया। '**शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्**' इस सत्यको उसने एक बाजूमें रख दिया था। परिणाम रहा रोगका हल्ला और अन्ततः अकाल मृत्यु।

इसी तरह एक दूसरे सज्जन थे, जो स्कूलमें प्रधानाध्यापक थे। वे कैंसरसे ग्रस्त होकर परलोक सिधारे। उन्हें कोई व्यसन नहीं था। वे सद्गृहस्थ और संयमी ब्राह्मण थे। अतः जब वे कैंसरग्रस्त हुए तो लोगोंको दुःखके साथ बहुत आश्चर्य भी हुआ। इन सज्जनकी कमी थी इनका क्रोधी और सन्देही स्वभाव, जिसका सामान्य लोग कभी विचार भी नहीं करते। इन्हें जब क्रोध आता था तो ये आग-बबूला हो जाते थे, घंटों गालियाँ देते और इस क्रोधका दौर कई दिनोंतक चलता रहता था। इन्हें कैंसर होनेके पीछे इन महाशयका क्रोधी स्वभाव ही जवाबदार था।

क्रोध दुधारी तलवार है। क्रोधके वशीभूत होनेपर मनुष्य दूसरे व्यक्तिको मारतक डालता है और स्वयं भी उस क्रोधका शिकार होता है। क्रोधके क्षणोंमें मनुष्यके आमाशय, हृदय, मूत्राशय, नलिकाविरहित ग्रन्थियों तथा रक्तवाहिनियों इत्यादिमें संकुचन होता है, ये अंग विकृत होते हैं और उनके निर्धारित कार्य ठप्प हो जाते हैं। इन सभीको सामान्य स्थितिके आनेमें तीन-चार घंटे लग जाते हैं। परिणामस्वरूप कई बीमारियोंके बीज बो दिये जाते हैं। भविष्यमें जब यह व्यक्ति किसी रोगसे पीड़ित होता है तब इन बीज कारणोंकी कोई कल्पना भी नहीं करता।

इसी प्रकार एक महिलाको देखा कि वह ३५-४० वर्षकी उम्रमें टी०बी०से ग्रस्त होकर परलोक सिधार गयी। सतहीरूपसे यह महिला टी०बी० रोगसे ग्रस्त होकर मरी। परंतु लेखकने इस महिलाके जीवनका अध्ययन करनेपर यह जाना कि उसके रोग एवं मरणका मूल कारण 'मोह' था, टी०बी० नहीं। 'मोह' का अर्थ है व्यक्तिकी ऐसी मानसिक स्थिति, जो भौतिक जगत्को ही सत्य मानकर सांसारिक भोगोंमें ही तृप्ति देखती है। यहाँ मैं इस महिलाके जीवनकी एक घटनाका उल्लेख करना उचित समझता हूँ। पतिकी छोटी बहनकी शादी थी। इस लड़कीको दिये जानेवाले दहेजमें 'एक बाल्टी' कम थी। अतः पतिने इस महिलाको उसके दहेजमें मिली बाल्टी देनेहेतु कहा। किंतु इस महिलाकी अविचल भूमिका रही कि यह बाल्टी मेरे पिताने मुझे दी है और यह बाल्टी मैं नहीं दूँगी। इस बातपर खूब विवाद हुआ, यहाँतक कि मार-पीट भी हुई। इस महिलाने बाल्टीको ऐसे पकड़ा कि छोड़ा ही नहीं। आज भी मुझे उस महिलाकी मोहवृत्ति विचलित कर देती है। इस संसारमें ऐसे भी लोग हैं, कम ही सही, पर जो सब कुछ देनेको तैयार रहते हैं। दूसरी ओर यह महिला जो ५०-६० रुपयेकी बाल्टी देनेको इतनी अहमियत दे रही थी!

इस प्रकार हम देखते हैं कि क्रोध, लोभ, मोह आदि मानसिक विकार और अनियमित दिनचर्या एवं अनुचित आहार-विहार ही रोग और मृत्युके कारण हैं।

योगवासिष्ठके उत्पत्ति-प्रकरण (२।१०)-में यम मृत्युको सम्बोधित करते हुए कहते हैं—

मृत्यो न किञ्चिच्छक्तस्त्वमेको मारयितुं बलात्।
मारणीयस्य कर्माणि तत्कर्तॄणीति नेतरत्॥

अर्थात् हे मृत्यो! तू स्वयं अपनी शक्तिसे किसी मनुष्यको नहीं मार सकती, मनुष्य किसी दूसरे कारणसे नहीं, अपने ही कर्मोंसे मारा जाता है।

यह तो हुई रोगोंकी उत्पत्ति और मृत्युकी बात। महर्षियोंने दीर्घजीवनके सूत्र भी दिये हैं, जिनका पालनकर मनुष्य दीर्घजीवी हो सकता है। आयुर्वेदमें सदाचारको रसायन कहा गया है अर्थात् जैसे रसायन-प्रयोगसे शरीर स्वस्थ होकर मनुष्य दीर्घजीवी होता है, वैसे ही सदाचारका पालन करनेसे मनुष्य स्वस्थ और दीर्घ जीवन प्राप्त कर सकता है। महर्षि चरक आचार-रसायनकी परिभाषा करते हुए कहते हैं—

सत्यवादिनमक्रोधं निवृत्तं मद्यमैथुनात्।
अहिंसकमनायासं प्रशान्तं प्रियवादिनम्॥
जपशौचपरं धीरं दाननित्यं तपस्विनम्।
देवगोब्राह्मणाचार्यगुरुवृद्धार्चने रतम्॥
आनृशंस्यपरं नित्यं नित्यं करुणवेदिनम्।
समजागरणस्वप्नं नित्यं क्षीरघृताशिनम्॥
देशकालप्रमाणज्ञं युक्तिज्ञमनहंकृतम्।
शास्त्राचारमसंकीर्णमध्यात्मप्रवणेन्द्रियम्॥
उपासितारं वृद्धानामास्तिकानां जितात्मनाम्।
धर्मशास्त्रपरं विद्यान्नरं नित्यरसायनम्॥
गुणैरेतैः समुदितैः प्रयुंक्ते यो रसायनम्।
रसायनगुणान् सर्वान् यथोक्तान् स समश्नुते॥

अर्थात् जो व्यक्ति सत्यवादी, अक्रोधी, मद्य तथा मैथुनसे निवृत्त, हिंसारहित, अनायास अर्थात् शारीरिक या मानसिक श्रमसे रहित, अतिशान्त, मृदुभाषी, जप और शुद्धिमें तत्पर, धैर्यशाली, प्रतिदिन दान करनेवाला तथा तपस्वी है एवं जो देव, गौ, ब्राह्मण, आचार्य, गुरु तथा वृद्धोंके अर्चन (सत्कार)-में रत है, नित्य अनृशंसता (अक्रूरता)-परायण तथा प्राणिमात्रको दयाकी दृष्टिसे देखता है, जिसका जागरण एवं निद्रा प्रकृतिके अनुकूल है, जो नित्य घृत और दुग्धका सेवन करता है और जो देश, काल (परिस्थिति)-के प्रभावका ज्ञाता है, कुशलतापूर्वक कार्य करता है तथा अहंकारशून्य है, जो शास्त्रोंके अनुकूल आचरण करता है, उदार प्रकृतिका है, जिसके मन, बुद्धि और विचार अध्यात्मकी ओर प्रवृत्त हैं, जो जितात्मा, आस्तिक, वृद्धोंका सेवक है, जो धर्मशास्त्रपरायण है, वह यदि आचाररूप रसायनके इन गुणोंका सेवन करता है तो वह यथोक्त फलों अर्थात् दीर्घजीवनको अवश्य प्राप्त कर सकता है।

इस प्रकार रोग तथा मृत्यु और स्वास्थ्य एवं दीर्घ जीवन—दोनों ही मनुष्यके आचरणपर निर्भर करते हैं।

अब प्रश्न उठता है कि मनुष्यका आचरण श्रेष्ठ कैसे बने? तो भगवान्‌की भक्ति ही वह संजीवनी बूटी और श्रद्धा ही अनुपान है, जिससे आचरण श्रेष्ठ और सारे रोग नष्ट होते हैं। श्रीरामचरितमानसमें गोस्वामीजी कहते हैं—

रघुपति भगति सजीवन मूरी। अनूपान श्रद्धा मति पूरी॥
एहि बिधि भलेहिं सो रोग नसाहीं। नाहिं त जतन कोटि नहिं जाहीं॥

आरोग्य-सूत्र

नरो हिताहारविहारसेवी समीक्ष्यकारी विषयेष्वसक्तः।
दाता समः सत्यपरः क्षमावानाप्तोपसेवी च भवत्यरोगः॥
मतिर्वचः कर्म सुखानुबन्धं सत्त्वं विधेयं विशदा च बुद्धिः।
ज्ञानं तपस्तत्परता च योगे यस्यास्ति तं नानुपतन्ति रोगाः॥

हितकारी आहार और विहारका सेवन करनेवाला, विचारपूर्वक काम करनेवाला, काम-क्रोधादि विषयोंमें आसक्त न रहनेवाला, सभी प्राणियोंपर समदृष्टि रखनेवाला, सत्य बोलनेमें तत्पर रहनेवाला, सहनशील और आप्तपुरुषोंकी सेवा करनेवाला मनुष्य अरोग (रोगरहित) रहता है। सुख देनेवाली मति, सुखकारक वचन और सुखकारक कर्म, अपने अधीन मन तथा शुद्ध पापरहित बुद्धि जिसके पास है और जो ज्ञान प्राप्त करने, तपस्या करने और योग सिद्ध करनेमें तत्पर रहता है, उसे शारीरिक और मानसिक कोई भी रोग नहीं होते (वह सदा स्वस्थ और दीर्घायु बना रहता है)। [**चरकसंहिता**]

ज्योतिर्लिंग-परिचय—

द्वादश ज्योतिर्लिंगोंके अर्चा-विग्रह

[गताङ्क ८ पृ०-सं० ३६ से आगे]

(१२) श्रीघुश्मेश्वर

घुश्मेश्वर, घुसृणेश्वर या घृष्णेश्वर नामक ज्योतिर्लिंग मध्य रेलवेकी मनमाड–पूर्णा लाइनपर मनमाडसे लगभग १०० कि०मी० दूर दौलताबाद स्टेशनसे २० कि०मी० दूर वेरुल ग्रामके पास स्थित है।* शिवपुराणमें इस लिंगके प्रादुर्भावके सम्बन्धमें एक रोचक कथा आयी है, जो संक्षेपमें इस प्रकार है—

दक्षिण दिशामें एक श्रेष्ठ पर्वत है, जिसका नाम है देवगिरि। वह देखनेमें अद्भुत तथा नित्य परम शोभासे सम्पन्न है। उसीके निकट भरद्वाजकुलमें उत्पन्न सुधर्मा नामके एक ब्रह्मवेत्ता ब्राह्मण रहते थे। उनकी प्रिय पत्नीका नाम सुदेहा था। दोनों भगवान् शंकरके भक्त थे। सुदेहा घरके कार्योंमें कुशल और पतिकी सेवा करनेवाली थी। सुधर्मा भी वेदवर्णित मार्गपर चलते थे और नित्य अग्निहोत्र किया करते थे। वे वेद-शास्त्रके मर्मज्ञ थे और शिष्योंको पढ़ाया करते थे। धनवान् होनेके साथ ही बड़े दाता और सौजन्य आदि सद्गुणोंके भाजन थे।

इतना होनेपर भी उनके कोई पुत्र नहीं था। ब्राह्मणको तो कोई दुःख नहीं था, परंतु उनकी पत्नी इससे बहुत दुखी रहती थी। वह पतिसे बार-बार पुत्रके लिये प्रार्थना करती। पति उसको ज्ञानोपदेश देकर समझाते, परंतु उसका मन नहीं मानता था। अन्ततोगत्वा ब्राह्मणने कुछ उपाय भी किया, परंतु वह सफल नहीं हुआ। तब ब्राह्मणीने अत्यन्त दुखी हो बहुत हठ करके अपनी बहन घुश्मासे पतिका दूसरा विवाह करा दिया। विवाहसे पहले सुधर्माने समझाया कि इस समय तो तुम बहनसे प्यार कर रही हो, परंतु जब इसके पुत्र हो जायगा तब इससे स्पर्धा करने लगोगी। उसने वचन दिया कि मैं बहनसे कभी डाह नहीं करूँगी। विवाह हो जानेपर घुश्मा दासीकी भाँति बड़ी बहनकी सेवा करने लगी। सुदेहा भी उसे बहुत प्यार करती रही। घुश्मा अपनी शिवभक्ता बहनकी आज्ञासे नित्य एक सौ एक पार्थिव शिवलिंग बनाकर विधिपूर्वक पूजा करने लगी। पूजा करके वह निकटवर्ती तालाबमें उनका विसर्जन कर देती थी।

शंकरजीकी कृपासे उसके एक सुन्दर, सौभाग्यवान् और सद्गुणसम्पन्न पुत्र हुआ। घुश्माका कुछ मान बढ़ा। इससे सुदेहाके मनमें डाहकी भावना पैदा हो गयी, पुत्र बड़ा हुआ। समयपर उसका विवाह हुआ। पुत्रवधू घरमें आ गयी। अब तो वह और भी जलने लगी। डाहने उसकी बुद्धिको भ्रष्ट कर दिया और एक दिन उसने रातमें सोते हुए पुत्रको मार डाला और उसी तालाबमें ले जाकर डाल दिया, जहाँ घुश्मा प्रतिदिन पार्थिव-लिंग विसर्जित करती थी। घर लौटकर वह सुखपूर्वक सो गयी।

सबेरे घुश्मा उठकर नित्यकी भाँति पूजनादि कर्म करने लगी। ब्राह्मण सुधर्मा भी अपने नित्यकर्ममें व्यस्त हो गये। इसी समय उनकी ज्येष्ठ पत्नी सुदेहा भी उठी और बड़े आनन्दसे घरके काम-काज करने

* कुछ लोग इसे राजस्थानके शिवाड़ नामक नगरमें भी बताते हैं।

लगी; क्योंकि उसके हृदयमें पहले जो ईर्ष्याकी आग जलती थी, वह अब बुझ गयी थी। उधर जब बहूने उठकर पतिकी शय्याको देखा तो वह खूनसे भीगी दिखायी दी और उसपर शरीरके कटे हुए कुछ अंग दिखायी पड़े, वह रोती हुई अपनी सास (घुश्मा)-के पास गयी और बोली—'माता! आपके पुत्र कहाँ हैं? उनकी शय्या खूनसे भीगी हुई है और उसपर शरीरके कुछ टुकड़े दिखायी देते हैं। हाय! मैं मारी गयी। किसने यह दुष्ट कर्म किया है? ऐसा कहती हुई वह भाँति-भाँतिसे करुण विलाप करती हुई रोने लगी।

सुधर्माकी बड़ी पत्नी सुदेहा भी उस समय 'हाय! मैं मारी गयी।' ऐसा कहकर ऊपरसे दुखी होनेका अभिनय करने लगी, किंतु यह सब सुनकर भी घुश्मा अपने नित्य पार्थिव-पूजनके व्रतसे विचलित नहीं हुई। उसका मन बेटेको देखनेके लिये तनिक भी उत्सुक नहीं हुआ। उसके पतिकी भी ऐसी ही अवस्था थी। जबतक नित्य-नियम पूरा नहीं होता, तबतक उन्हें दूसरी किसी बातकी चिन्ता नहीं होती। पूजन समाप्त, होनेपर घुश्माने अपने पुत्रकी शय्यापर दृष्टिपात किया तथापि उसने यह सोचकर दुःख न माना कि जिन्होंने यह बेटा दिया था, वे ही इसकी रक्षा करेंगे। एकमात्र वे प्रभु सर्वेश्वर शम्भु ही हमारे रक्षक हैं तो मुझे चिन्ता करनेकी क्या आवश्यकता है? यह सोचकर उसने शिवके भरोसे धैर्य धारण किया और उस समय दुःखका अनुभव नहीं किया। वह पूर्ववत् पार्थिव शिवलिंगोंको लेकर स्वस्थ-चित्तसे शिवके नामोंका उच्चारण करती हुई उस तालाबके किनारे गयी। उन पार्थिव लिंगोंको तालाबमें डालकर जब वह लौटने लगी तो उसे अपना पुत्र उसी तालाबके किनारे खड़ा दिखायी दिया। उस समय अपने पुत्रको सकुशल देखकर घुश्माको न हर्ष हुआ और न विषाद। वह पूर्ववत् स्वस्थ बनी रही। इसी समय उसपर सन्तुष्ट हुए ज्योतिःस्वरूप महेश्वर शिव उसके सामने प्रकट हो गये और बोले—'सुमुखि! मैं तुमपर प्रसन्न हूँ। वर माँगो। तेरी दुष्टा सौतने इस बच्चेको मार डाला था। अतः मैं उसे त्रिशूलसे मारूँगा।'

तब घुश्माने शिवको प्रणाम किया और यही वर माँगा कि उसकी बड़ी बहन सुदेहाको भगवान् क्षमा कर दें।

शिव बोले—'उसने तो बड़ा भारी अपकार किया है, तुम उसपर उपकार क्यों करती हो? दुष्ट कर्म करनेवाली सुदेहा तो दण्डके योग्य है।'

घुश्माने कहा—'देव! मैंने यह शास्त्र-वचन सुन रखा है कि जो अपकार करनेवालोंपर भी उपकार करता है, उसके दर्शनमात्रसे पाप बहुत दूर भाग जाता है। प्रभो! मैं चाहती हूँ कि उसके भी पाप भस्म हो जायँ। फिर उसने कुकर्म किया है तो करे, मैं ऐसा क्यों करूँ?'

घुश्माके ऐसा कहनेपर दयासिन्धु भक्तवत्सल महेश्वर और भी प्रसन्न हुए और बोले—'घुश्मे! तुम कोई और भी वर माँगो। मैं तुम्हारे लिये हितकर वर अवश्य दूँगा; क्योंकि मैं तुम्हारी इस भक्तिसे तथा विकारशून्य स्वभावसे बहुत प्रसन्न हूँ।'

भगवान् शिवकी बात सुनकर घुश्मा बोली—'प्रभो! यदि आप वर देना चाहते हैं तो लोगोंकी रक्षाके लिये सदा यहाँ निवास कीजिये और मेरे नामसे ही आपकी ख्याति हो।'

तब भगवान् शिव बड़ी प्रसन्नतासे घुश्माको अनेक वर देकर वहाँ ज्योतिर्लिंग-रूपमें स्थित हो गये और घुश्माके नामपर ही घुश्मेश्वर कहलाये। उस सरोवरका नाम शिवजीके कथनानुसार ही शिवालय हो गया।

उधर सुदेहा भी पुत्रको जीवित देखकर बहुत लज्जित हुई। उसने बहुत पश्चात्ताप किया और पति तथा बहनके साथ उस शिवलिंगकी एक सौ एक दक्षिणावर्त परिक्रमा की। पूजा करके परस्पर मनका मैल दूर हो गया और वे वहाँ सुखसे रहने लगे। [समाप्त]

श्राद्ध-तत्त्व-प्रश्नोत्तरी

(श्रीराजेन्द्रकुमारजी धवन)

प्रश्न— श्राद्ध किसे कहते हैं ?

उत्तर— श्रद्धासे किया जानेवाला वह कार्य, जो पितरोंके निमित्त किया जाता है, श्राद्ध कहलाता है।

प्रश्न— कई लोग कहते हैं कि श्राद्धकर्म असत्य है और इसे ब्राह्मणोंने ही अपने लेने-खानेके लिये बनाया है। इस विषयपर आपका क्या विचार है ?

उत्तर— श्राद्धकर्म पूर्णरूपेण आवश्यक कर्म है और शास्त्रसम्मत है। हाँ, वर्तमानकालमें लोगोंमें ऐसी रीति ही चल पड़ी है कि जिस बातको वे समझ जायँ—वह तो उनके लिये सत्य है; परंतु जो विषय उनकी समझके बाहर हो, उसे वे गलत कहने लगते हैं।

कलिकालके लोग प्राय: स्वार्थी हैं। उन्हें दूसरेका सुखी होना सुहाता नहीं। स्वयं तो मित्रोंके बड़े-बड़े भोज-निमन्त्रण स्वीकार करते हैं, मित्रोंको अपने घर भोजनके लिये निमन्त्रित करते हैं, रात-दिन निरर्थक व्ययमें आनन्द मनाते हैं; परंतु श्राद्धकर्ममें एक ब्राह्मणको भोजन करानेमें भार अनुभव करते हैं। जिन माता-पिताकी जीवनभर सेवा करके भी ऋण नहीं चुकाया जा सकता, उनके पीछे भी उनके लिये श्राद्धकर्म करते रहना आवश्यक है।

प्रश्न— श्राद्ध करनेसे क्या लाभ होता है ?

उत्तर— मनुष्यमात्रके लिये शास्त्रोंमें देव-ऋण, ऋषि-ऋण और पितृ-ऋण—ये तीन ऋण बताये गये हैं। इनमें श्राद्धके द्वारा पितृ-ऋण उतारा जाता है।

विष्णुपुराणमें कहा गया है कि 'श्राद्धसे तृप्त होकर पितृगण समस्त कामनाओंको पूर्ण कर देते हैं।' (३।१५।५१) इसके अतिरिक्त श्राद्धकर्तासे विश्वेदेवगण, पितृगण, मातामह तथा कुटुम्बीजन—सभी सन्तुष्ट रहते हैं। (३।१५।५४) पितृपक्ष (आश्विनका कृष्णपक्ष)-में तो पितृगण स्वयं श्राद्ध ग्रहण करने आते हैं तथा श्राद्ध मिलनेपर प्रसन्न होते हैं और न मिलनेपर निराश हो शाप देकर लौट जाते हैं। विष्णुपुराणमें पितृगण कहते हैं—हमारे कुलमें क्या कोई ऐसा बुद्धिमान् धन्य पुरुष उत्पन्न होगा, जो धनके लोभको त्यागकर हमारे लिये पिण्डदान करेगा। (३।१४।२२) विष्णुपुराणमें श्राद्धकर्मके सरल-से-सरल उपाय बतलाये गये हैं। अत: इतनी सरलतासे होनेवाले कार्यको त्यागना नहीं चाहिये।

प्रश्न— पितरोंको श्राद्ध कैसे प्राप्त होता है ?

उत्तर— यदि हम चिट्ठीपर नाम-पता लिखकर लैटर-बक्समें डाल दें तो वह अभीष्ट पुरुषको, वह जहाँ भी है, अवश्य मिल जायगी। इसी प्रकार जिनका नामोच्चारण किया गया है, उन पितरोंको, वे जिस योनिमें भी हों, श्राद्ध प्राप्त हो जाता है। जिस प्रकार सभी पत्र पहले बड़े डाकघरमें एकत्रित होते हैं और फिर उनका अलग-अलग विभाग होकर उन्हें अभीष्ट स्थानोंमें पहुँचाया जाता है, उसी प्रकार अर्पित पदार्थका सूक्ष्म अंश सूर्य-रश्मियोंके द्वारा सूर्यलोकमें पहुँचता है और वहाँसे बँटवारा होता है तथा अभीष्ट पितरोंको प्राप्त होता है।

पितृपक्षमें विद्वान् ब्राह्मणोंके द्वारा आवाहन किये जानेपर पितृगण स्वयं उनके शरीरमें सूक्ष्मरूपसे स्थित हो जाते हैं। अन्नका स्थूल अंश ब्राह्मण खाता है और सूक्ष्म अंशको पितर ग्रहण करते हैं।

प्रश्न— यदि पितर पशु-योनिमें हों, तो उन्हें उस योनिके योग्य आहार हमारेद्वारा कैसे प्राप्त होता है ?

उत्तर— विदेशमें हम जितने रुपये भेजें, उतने ही रुपयोंका डालर आदि (देशके अनुसार विभिन्न सिक्के) होकर अभीष्ट व्यक्तिको प्राप्त हो जाते हैं। उसी प्रकार श्रद्धापूर्वक अर्पित अन्न पितृगणको, वे जैसे आहारके योग्य होते हैं, वैसा ही होकर उन्हें मिलता है।

प्रश्न— यदि पितर परमधाममें हों, जहाँ आनन्द-ही-आनन्द है, वहाँ तो उन्हें किसी वस्तुकी भी आवश्यकता नहीं है। फिर उनके लिये किया गया श्राद्ध क्या व्यर्थ चला जायगा ?

उत्तर— नहीं। जैसे, हम दूसरे शहरमें अभीष्ट व्यक्तिको कुछ रुपये भेजते हैं, परंतु रुपये वहाँ पहुँचनेपर पता चले कि अभीष्ट व्यक्ति तो मर चुका है, तब वह रुपये हमारे ही नाम होकर हमें ही मिल जायँगे।

ऐसे ही परमधामवासी पितरोंके निमित्त किया गया श्राद्ध पुण्यरूपसे हमें ही मिल जायगा। अत: हमारा लाभ तो सब प्रकारसे ही होगा। ॐ शान्ति: शान्ति: शान्ति: !

संत-चरित—

प्रेमी भक्त श्यामानन्द

(श्रीराधाकृष्णजी)

सोलहवीं शताब्दी आधीसे अधिक बीत चुकी थी। बंगाल और उड़ीसाके अध्यात्मसिन्धुमें भगवान् श्रीचैतन्यकी भावतरंगोंके ज्वार-भाटे आ रहे थे। बर्दवानके अम्बिका-कालनाके गौर-मन्दिरमें आरतीके बाद आचार्य हृदयचैतन्य भगवान्‌की लीला-कथा कहनेमें लीन थे कि इसी समय एक नवयुवक आकर उनके चरणोंमें लोट गया। करुण-कातर स्वरमें बोला—'प्रभो! मेरा जीवन धन्य करें। मुझे दीक्षा देकर अपना शिष्य स्वीकार कर लें।'

हृदयचैतन्यने उसे बैठाकर उसके सिरपर प्रेमसे हाथ फेरा। स्नेहपूर्वक उससे पूछने लगे—'बेटा! तुम कौन हो? कहाँसे आ रहे हो? तुम्हारा परिचय क्या है?'

उत्तरमें उस नवयुवकने अपना परिचय बतलाया।

'बहुत दूर उड़ीसाके धरेंदापुरमें उसका निवास-स्थान है। उतनी दूरसे जंगल और पहाड़ोंमें भटकता हुआ, नदियोंको लाँघता हुआ, पैदल चला आ रहा हूँ आपके पास अम्बिका-कालनामें। आकांक्षा एकमात्र यही है कि आप मुझे अपने शिष्यके रूपमें स्वीकार कर लें—मुझे दीक्षा दे दें। फिर तो मेरा जीवन धन्य हो जायगा।' आचार्य हृदयचैतन्यने देखा कि दीर्घ-यात्राके फलस्वरूप युवकके पैर फट गये हैं, वहाँसे खून निकल रहा है। थकावटके कारण शरीर शिथिल, अवसन्न। दोनों आँखोंमें क्लान्ति भरी है और उसके भीतरसे भक्तिकी आकुलता झाँक रही है।

'बेटा! तुमने अपना नाम तो बतलाया नहीं।'

'नाम है मेरा दुखी!'

'दुखी!··· ऐसा न कहो बेटा, तुम दुखी नहीं।' आचार्य हृदयचैतन्यने कहा—'तुम्हें आश्रय मिलेगा, तुम्हें दीक्षा मिलेगी। इसी गौर-विग्रहके सामने मैं तुम्हें दीक्षा दूँगा। अबसे तुम्हारा नाम होगा—'दुखी कृष्णदास।' विश्वास रखो, मैं तुम्हें जो कुछ दे सकता हूँ, दूँगा।'

और वह नवयुवक 'दुखी' से कृष्णदास कहलाया। दीक्षा मिल गयी।

चलने लगी एक क्रमसे गौड़ीय वैष्णव पंथकी साधना। दिन आने लगे, रात जाने लगी···।

इसी उम्रमें वह असाधारण था। उसने वैष्णव-शास्त्रोंका मन्थन किया था। विद्यामें कमी नहीं, बुद्धिमें कमी नहीं, निष्ठा और भक्तिमें कमी नहीं। उपयुक्त शिष्यको उपयुक्त गुरु मिले थे। बड़ी निष्ठा थी, बड़ी भक्ति थी। अपनी साधनामें वह तन्मय रहता।

जातिका वह गोप था। पिताका नाम था श्रीकृष्ण मंडल, माँ थी दुरिका। संतानें तो कई हुईं, मगर टिकी एक भी नहीं। जो जन्म लेते थे, अकाल ही काल-कवलित हो जाते थे। भगवान्‌का ऐसा कोप! क्या करें? पिता दुखी थे, माँ दुखी थी। ऐसे ही समयमें माँकी गोदमें एक बालक आया। दुखी माता-पिताने उसका भी नाम रख दिया 'दुखी'।

माँ-बाप चाहते थे कि बेटा विद्वान् बने, सुनाम अर्जन करे। दुखीको संस्कृत-टोलमें पढ़नेके लिये भेजा गया। वाह, क्या छात्र है! विचित्र थी उसकी मेधा। अद्भुत थी उसकी प्रतिभा! बड़ी शीघ्रताके साथ वह पाठ-पर-पाठ समाप्त करता गया। और थोड़े ही दिनोंमें शास्त्रके दुरूह ग्रन्थोंका अध्ययन-मनन करने लगा। किशोरावस्थासे ही मनमें वैराग्यने नीड़ बना लिया था। निताई-गौरांगके नाम उसके हृदयमें तरंगित होते रहते। संसारमें क्या रखा है? सब क्षणभंगुर। इसे पाया तो क्या पाया? पाना तो उसे है, जो अनश्वर है। लेना तो वह है, जो कभी नष्ट न हो। अगर वह गृह-त्याग न करे तो क्या करे? यहाँ मन नहीं लगता। हृदयचैतन्यका नाम वह बार-बार सुनता आ रहा है। वह उनके पास ही जायगा, उनसे ही दीक्षा लेगा।·····

और एक दिन वह घर-द्वार, माता-पिताका मोह त्यागकर चल पड़ा। वह चलता जा रहा है, चलता जा रहा है। बहुत दूर जाना है उसे। बर्दवानके अम्बिका-कालनामें जाना है। वहाँ गौर-विग्रहका मन्दिर है। वहीं हृदयचैतन्य रहते हैं। उनके चरणोंमें जाकर ही वह कृतार्थ होगा। वह चला जा रहा है, चला जा रहा है।·····

गौर-विग्रहकी सेवा-पूजामें दुखी कृष्णदास रम गये। वैष्णव आचार और निष्ठाकी तपस्या चलने लगी। मूर्तिके स्नानके लिये बहुत दूर जाकर गंगाजल लाना पड़ता है। घड़ा भी बहुत बड़ा है। इतने बड़े घड़ेमें जल भरकर इतनी दूर लाना। हो नहीं पाता, फिर भी कृष्णदास अपने काममें लगा हुआ है। घड़ेको ढोते-ढोते सिरमें बहुत बड़ा घाव हो गया है। अब असहनीय है। किसी तरह भी जल लाया नहीं जाता। फिर भी निष्ठा है। इस तनको क्या सोचे; वह गौर-विग्रहको सोचता है, उनकी पूजाके बारेमें सोचता है, उनकी सेवाके बारेमें सोचता है। कार्यक्रम उसी प्रकार चलता जा रहा है, घाव भी उसी प्रकार बढ़ता जा रहा है।

एक दिन आचार्यने स्नेहपूर्वक उसके सिरपर हाथ फेरा तो सिहर उठे, चकित रह गये। 'इतना बड़ा घाव? यह कैसे?'

'गुरुदेव! घड़ा भारी है और स्नान-आचमनके लिये गंगाजीका जल लाना आवश्यक है।'

'परंतु इतना बड़ा घाव होनेपर भी तुमने गंगाजल लाना छोड़ा नहीं?'

'गुरुदेव! यदि ऐसा करता तो भगवान्‌की सेवामें बाधा होती।'

शिष्यकी इस निष्ठाने गुरुको भी चकित-स्तम्भित कर दिया।

'बेटा! तुम्हारे आध्यात्मिक जीवनका भविष्य महान् है। तुम चले जाओ वृन्दावन। वहाँ श्रीजीव गोस्वामीके पास जाकर मेरा नाम लेना। मैं उन्हें पत्र भी दे रहा हूँ। वहाँ जाकर उनके आश्रयमें रहना और वैष्णव-शास्त्रोंका अध्ययन करना।'

हृदयचैतन्यने श्रीजीव गोस्वामीके नाम पत्र लिख दिया और उसे लेकर दुखी कृष्णदास चल पड़े। श्रीधाम, नवद्वीप, गया, काशी, प्रयाग और एक दिन वृन्दावनमें आ उपस्थित हुए। वहाँ जाकर उन्होंने रघुनाथ गोस्वामीका नाम सुना। सम्पूर्ण व्रजमण्डलमें रघुनाथ गोस्वामीका सुयश प्रकाशकी भाँति फैला हुआ था। प्रेम-भक्तिका ऐसा समर्थ साधक न देखा गया, न सुना गया। राधाकुण्डके किनारे उनकी कुटियामें भक्तोंकी भीड़ लगी रहती थी।

दुखी कृष्णदासको जाना था श्रीजीव गोस्वामीके पास; परंतु पहुँच गये वे रघुनाथ गोस्वामीकी कुटियामें। जाकर उन्हें प्रणाम किया।

रघुनाथदासने कहा—'बेटा! तुम्हें श्रीजीव गोस्वामीके पास जाना है। मेरे पास क्यों आये हो? जाकर उनकी शरण लो और शास्त्र तथा साधनामें मन लगाओ।'

रघुनाथदासने एक आदमीको साथ कर दिया। दुखी कृष्णदास श्रीजीव गोस्वामीकी कुटियापर पहुँचे। अपने गुरुका पत्र उन्हें दे दिया। श्रीजीव गोस्वामी मुसकराने लगे।

दुखी कृष्णदास वहाँ वर्षों रह गये। बीच-बीचमें जन्मभूमि उड़ीसा जाते रहते, वैष्णवधर्मका प्रचार करते रहते। सब होता; परंतु वृन्दावन गये बिना जी न मानता। उड़ीसासे घूम-फिरकर वे वृन्दावन पहुँच ही जाते, जहाँ भगवान् श्रीकृष्णने विहार किया था, जहाँके चप्पे-चप्पेपर उनकी लीलाओंका मधुर इतिहास अंकित है।

उन्होंने वृन्दावनके निकुंज-मन्दिरमें झाड़ू देनेका काम ले लिया। रोज वहाँ झाड़ू लगाकर मन्दिर साफ करते और भगवान्‌की लीलाओंका स्मरण करते हुए आनन्दमें मग्न रहते। मनमें एक आशा बलवती होती जा रही थी कि 'यहाँ रहकर क्या कभी राधा-गोविन्दकी निकुंज-लीला भी देख पाऊँगा?'

एक दिन····· प्रभात होनेहीवाला था। दुखी कृष्णदासकी नींद टूटी और वे अपने काममें लग गये। झाड़ू देते हुए सहसा उन्होंने देखा कि मन्दिरके बाहरी प्रांगणमें कोई चीज चमक रही है। समीप गये। देखा वह सोनेका नूपुर था। उससे एक दिव्य छटा निकल रही है। उन्होंने उसे उठा लिया। सहसा उनका हृदय भी उसी दिव्य छटासे आलोकित हो उठा। 'अरे, बड़ा भाग्यशाली है तू कृष्णदास, तुझे राधाप्यारीके चरणोंका नूपुर मिल गया!···'

दुखी कृष्णदासकी आँखोंसे अश्रुधारा प्रवाहित होने लगी। इसी समय एक अनुपम रूपवाली किशोरी वहाँ पहुँचती है और कृष्णदाससे पूछती है—'भैयाजी, तुम्हें एक सोनेका नूपूर मिला है?'

कृष्णदासने कहा—'हाँ, मिला तो है, किंतु वह है किसका?'

'एक राजकुमारी मेरी सखी है। वही मेरे साथ मन्दिरमें आयी थी। उसीका सोनेका नूपुर गिर गया। वह तरुणी है, राजकुमारी है, किसीके सामने नहीं आती। लानेके लिये मुझे भेजा है।'

दुखी कृष्णदासने युक्ति लगायी। बोले—'परंतु मैं यह कैसे जानूँ कि तुम सच कहती हो या नहीं? जिसका नूपुर है, उसीको बुला लाओ तो जानूँ। मैं स्वयं तुम्हारी सखीके चरणोंमें पहनाकर देखूँगा कि नूपुर उन्हें ठीक-ठीक आता है या नहीं। यह भी तो देख लेना होगा।'

'ऐसे नहीं दोगे?'

'कह तो दिया।'

किशोरीने देख लिया कि यह आदमी अपनी बातसे नहीं टलेगा। चली गयी राजकुमारीको बुलाने। थोड़ी देरके बाद ही मन्दिरके उस प्रांगणमें रूपमाधुर्यका आलोक जगमगा उठा। किशोरीको साथ लिये हुए वह तरुणी अपना नूपुर लेनेके लिये आयी थी।····· 'मैं सब जानता हूँ। मुझे छलो मत। तुम श्रीराधारानी हो, राधारानी! तुम नूपुरके उद्धारके लिये नहीं, इस अधम कृष्णदासके उद्धारके लिये आयी हो। मालूम है, मुझे मालूम है।' कृष्णदासका तन पुलकित, आँखोंसे अविरल अश्रुधारा, कण्ठ गद्गद। धन्य भाग्य, आज ब्रह्ममुहूर्तमें श्रीराधाजीके दर्शन हो गये।·····

फिर भी कृष्णदासने पूछा—'तुम दोनों सखियाँ निभृत रातमें मन्दिरमें आयी थीं क्यों?'

अमृतमें घुली हुई मीठी वाणी सुनायी पड़ी—'क्या आना और क्या जाना है वैष्णव! यह मेरा ही निकुंज मन्दिर है। तुम्हें जो जानना था, वह स्पष्ट बतला दिया। अब लाओ, मेरा नूपुर दे दो।'

मनका पर्दा खुलता जा रहा है। कृष्णदासको देहका भान नहीं। उनकी आँखोंसे अश्रुधारा बह रही है। अवाक् हैं वे, निष्पन्द हैं, चुप हैं।·····

'देखो वैष्णव! हठ न करो। प्रात: हो आया। मेरा नूपुर वापस करो।'

कृष्णदासने रोते-रोते कहा—'मैं सब जानता हूँ। कि तुम राधारानी हो। मुझपर कृपा करो। अपने वास्तविक रूपमें मुझे दर्शन दो।'

राधारानी बोलीं—'इन आँखोंसे तुम मेरा चिन्मय रूप नहीं देख सकोगे।'

मगर कृष्णदास कातर थे, रो रहे थे, बिलख रहे थे।

तब राधारानीकी सखी ललिताजीने कहा—'जब ऐसी बात है तो भक्तपर थोड़ी-सी कृपा और कर दो। इन्हें दर्शन करनेकी शक्ति भी दे दो।'

और क्षणमात्रमें ही सारा संसार बदल गया। दुखी कृष्णदासने क्या देखा, इसे कौन कह सकेगा और कौन जान सकेगा?

अपना रूप दिखलाकर राधारानीने कहा—'तुम्हारी भक्ति और निष्ठाने मुझे आकृष्ट किया है। मेरी कृपाका चिह्न तुम अपने मस्तकपर धारण कर लो।'

और राधारानीने अपना नूपुर दुखी कृष्णदासके मस्तकसे छुला दिया।

उसके बाद कहाँ राधारानी और कहाँ ललिता? दोनों अन्तर्धान हो गयीं। भक्त कृष्णदास सुध-बुध खोकर मूर्च्छित हो गये।

चेत होनेपर वे रोते हुए श्रीजीव गोस्वामीके पास पहुँचे।

सारा हाल कहा और फिर रोने लगे। राधारानीको देखा, उनकी सखी ललिताको देखा। राधारानीने कृपापूर्वक अपना दर्शन दिया, अपने स्वर्ण-नूपुरको मेरे मस्तकसे छुला दिया। यह देखिये, ललाटपर उसका चिह्न।

श्रीजीव गोस्वामीने कहा—'भाग्यवान् हो वत्स! तुम्हें राधारानीके दर्शन सुलभ हो गये। अब तुम्हें दुखी कृष्णदास कौन कहेगा? अबसे तुम गोस्वामी श्यामानन्द हो गये।'

और तबसे वे श्यामानन्द कहे जाने लगे। व्रजमण्डलमें धूम मच गयी। राधारानीने दुखी कृष्णदासको अपना दर्शन दिया, चिन्मय रूप दिखाया और अपने नूपुरका तिलक उसके ललाटपर लगा दिया। अब वे श्यामानन्द हैं। हर्षित होकर श्रीजीव गोस्वामीने उन्हें यह नाम दे दिया है।

बात दूर-दूरतक फैली। बंगालमें बैठे हुए आचार्य

हृदयचैतन्यने भी सुना। सुना कि 'आपके शिष्यने आपका दिया हुआ नाम छोड़ दिया, आपका वैष्णवी तिलक छोड़ दिया। वह बिल्कुल परिवर्तित है। उसने दूसरा गुरु भी कर लिया।'

क्रोध आना स्वाभाविक था। हृदयचैतन्यने श्रीजीव गोस्वामीको पत्र लिखा—'दुखी कृष्णदासको मेरे पास अविलम्ब वापस भेज दीजिये—तत्काल!' श्यामानन्द कालना आ गये। गुरुदेवने क्रुद्ध होकर पूछा—'क्यों रे, तेरी ऐसी स्पर्धा! तूने मेरा दिया हुआ नाम बदल दिया? तूने गौड़ीय वैष्णवका तिलक मिटा दिया? तेरा इतना साहस? बोल, जवाब दे?'

'गुरुदेव! यह आपकी कृपासे ही सम्भव हुआ?'

'कैसे?'

श्यामानन्दने सारा हाल बतलाया। अपनी सारी बात कह गये। मगर क्रोधके सामने क्या तर्क और क्या विवेक! हृदयचैतन्यने कहा—'छोड़-छोड़ यह अपना ढकोसला; रख अपना प्रपंच। मैंने जो तुझे नाम दिया है, उसे रख; फिरसे गौड़ीय वैष्णवोंका तिलक ललाटपर धारण कर। तू गुरुकी आज्ञा भी नहीं मानेगा?'

श्यामानन्दने कहा—'प्रभो! ललाटपर यह नवीन तिलक मुझे प्रसादमें मिला है। मैं इसे अपने हाथों नहीं मिटा सकता। मिटाना हो तो आप ही इसे अपने हाथसे मिटा दीजिये।' ठाकुर हृदयचैतन्यने अपने वस्त्रसे रगड़कर तिलकको मिटा देना चाहा। परंतु कहाँ? तिलक तो मिटता नहीं!'

गुरु मिटाते-मिटाते हार गये हैं, किंतु तिलक ज्यों-का-त्यों, जैसा-का-तैसा है। बार-बार मिटाना चाहते हैं, लेकिन नहीं मिट पाता। कौन कहता है कि यह तिलक साधारण है? सचमुच इसके ललाटका यह तिलक अलौकिक है, दिव्य है।

यह मिटनेवाला नहीं, मिटेगा भी नहीं!

गुरुने पुलकित होकर अपने शिष्यको गलेसे लगा लिया।

× × ×

इन्हीं श्यामानन्दके बारह शिष्योंने उड़ीसामें वैष्णवपंथकी बारह शाखाएँ चलायीं। स्वर्णरेखा नदीके तीर गोपीवल्लभपुरमें श्यामानन्दी-सम्प्रदायका प्रधान केन्द्र स्थापित हुआ। उड़ीसाकी संस्कृति और आध्यात्मिक विचारधारापर श्यामानन्दका प्रभाव उसी प्रकार अमिट है, जिस प्रकार श्रीराधारानीका दिया हुआ तिलक उनके ललाटपर अमिट था।

सन्त-वाणी

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज)

अपनी निर्बलताका ज्ञान हो और अपनेको निर्बल मानते हो तो अनन्तकी निर्भरता स्वीकार करनी चाहिये। निर्भर हो जानेपर अनन्तसे आत्मीयता स्वतः हो जाती है। तब जीवनमें असफलताके लिये स्थान ही नहीं रहता। जीवनमें दो ही बातें हो सकती हैं, चाहे वस्तुओंकी ममताका त्याग अथवा अनन्तकी निर्भरता तथा प्रियता। अनन्तकी निर्भरता तथा प्रियतासे निर्बल-से-निर्बल भी अनन्तसे बल प्राप्त कर सकता है।

जीवनमें कठिनाई तब आती है, जब हम प्राप्त बलके द्वारा सुख-भोग करने लगते हैं। संसार हमारे मनका हो जाय, भगवान् हमारे मनके हो जायँ—यही सबसे बड़ी निर्बलता है। मनकी बात पूरी न होना तो निर्बलता है ही, पर मनकी बात पूरी हो जाना बड़ी भारी निर्बलता है, कारण कि जिन साधनोंसे हमारे मनकी बात पूरी होती है, उन्हीं साधनोंपर हम आश्रित हो जाते हैं। वे साधन ऐसे नहीं हैं कि जिनसे हमारा नित्यसम्बन्ध हो। उन साधनोंके आश्रित होनेमें पराधीनता है। इस पराधीनताका ज्ञान जिसको हो जाता है तथा जो पराधीनताके दुःखसे दुःखी हो जाता है, उसका सम्बन्ध वस्तुओंसे नहीं रहता। तब जो होना चाहिये, वह स्वतः होने लगता है और जो नहीं होना चाहिये, उसकी उत्पत्ति ही नहीं होती।

रघुकुलपर कामधेनुनन्दिनीकी अनुकम्पा

(श्रीजगदीशप्रसादजी गुप्त)

इतिहास साक्षी है कि विश्वस्त्रष्टाके मानसपुत्र महर्षि वसिष्ठने अपनी चितकबरी होमधेनु (कामधेनु) शबला गायकी सेवा तथा भक्तिके प्रभावसे राजर्षि विश्वामित्रका उनकी चतुरंगिणी सेनासहित विशिष्ट आतिथ्य किया था। उस गायके विलक्षण प्रभावको देखकर राजर्षि विश्वामित्रने उनसे उस गायको उन्हें देनेकी माँग की और अनेक प्रकारके प्रलोभन उस गायके बदलेमें दिये, लेकिन वसिष्ठजी अपनी उस गायको देनेको तैयार नहीं हुए। विश्वामित्र राजबलसे उनकी उस गायको घसीटकर ले जाने लगे। शबला गायने महर्षिसे
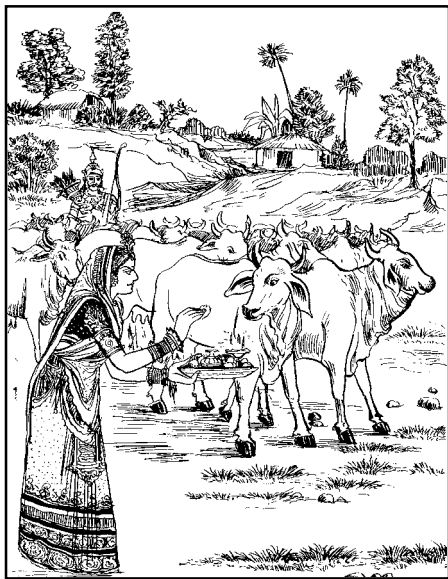
अनुमति लेकर अपने शरीरसे अनन्त संख्यामें यवन, खस, पह्लव, हूण आदि सैनिकोंको उत्पन्नकर विश्वामित्रजीकी सेना समाप्त कर दी। सूर्यवंशके महाराज दिलीपने सन्तानप्राप्तिकी इच्छासे महर्षि वसिष्ठके आदेशपर उनकी शबला गायकी पुत्री नन्दिनीकी सेवा की। उन्हें पुत्र-लाभ हुआ। उस बालकका नाम रघु पड़ा और इन्हीं रघुके कारण आगे यह वंश रघुवंश कहलाया। रघुके पश्चात् उनके पुत्र अज और अजके पुत्र दशरथ अयोध्याके राजा हुए।

अयोध्यानरेश चक्रवर्ती महाराज दशरथके यहाँ परब्रह्म परमेश्वर मर्यादापुरुषोत्तम प्रभु श्रीरामने अपने तीन भाइयोंके साथ अवतार धारणकर पृथ्वीको धन्य किया। इन अयोध्याके राजकुमारोंके समस्त लीलाकालमें वसिष्ठजीकी कामधेनुनन्दिनी उनकी कृपामयी रही। संक्षेपमें वर्णित है कि वह नन्दिनी रघुकुलकी सदैव वन्दनीय भी रही। यहाँ विभिन्न अवसरोंपर नन्दिनीकी कृपाके दृष्टान्त द्रष्टव्य हैं—

१-अयोध्याके राजकुमारोंके उपनयनोत्सवपर— उपनीत ब्रह्मचारीकी झोलीमें भिक्षामें प्राप्त पदार्थ आचार्यके होते हैं, लेकिन वसिष्ठजीने तत्काल समस्त पदार्थोंको वितरण करा दिया। उनकी कामधेनुनन्दिनी क्षणार्धमें नवीन सृष्टि करनेमें समर्थ थी। फिर भी उन्होंने कृपापूर्वक कुछ स्वल्पांश भिक्षा—झोलियोंसे प्राप्त पदार्थोंको अपने आश्रम भेजनेकी अनुमति दी।

२-गुरुकुलवासमें— उपनयनोत्सव-समाप्तिपर अयोध्याके राजकुमारोंने गुरुकुलमें प्रवेश किया। सर्वप्रथम नन्दिनी ही आश्रमद्वारपर उनसे हुंकारकर मिली और उनका भव्य स्वागत किया। राजकुमारोंने उसके सम्मुख प्रणिपात किया, उसने उनके सिर सूँघे और उसके स्तनोंसे दुग्ध झरने लगा। नन्दिनीने इन राजकुमारोंके अश्वाजिन तथा मृगचर्म मुखसे पकड़कर हटा दिये और उसी समय अद्भुत कोमल, परम मनोहर चर्म प्रकट किये—वे अजिन सुस्पर्श तथा सुरम्य थे। नन्दिनीके होनेपर उन राजकुमारोंको भिक्षाटन करनेकी आवश्यकता नहीं हुई, उनके लिये उसने अद्भुत सुस्वादु कन्द, फल प्रकट करते रहनेका क्रम बना लिया। कलशमें जल-आनयन, आश्रम-मार्जन आदि कार्य नन्दिनीके एक हुँकारसे पूर्ण हो जाते थे।

३-गुरुकुलसे विदा—समावर्तन-संस्कारके समय— गुरुकुलमें राजकुमारोंकी चौंसठ दिनोंमें शिक्षा पूरी हुई। उनके समावर्तनमें नन्दिनी ब्रह्ममुहूर्तसे ही हुंकार करने लगी और उसने सुरदुर्लभ उद्वर्तन, अंगराग, माल्य,

आभरण, वस्त्रादिकी राशि लगा दी। राजकुमारोंको समावर्तनके समय वस्त्रालंकार देनेका प्रथम स्वत्व उनकी गुरुमाताका था और यह सुयोग कार्य भी नन्दिनीकी सेवासे पूर्ण हुआ। गुरु-दक्षिणा देनेका प्रश्न उठा ही नहीं—रघुकुल तो नन्दिनीका प्रसाद ही था, गुरुका आशीर्वाद और उनकी अनुकम्पा इन राजकुमारोंको नन्दिनीकी कृपासे ही उपलब्ध हुई।

४-श्रीरामके वैराग्यके आवेशमें होनेपर— समावर्तनके पश्चात् श्रीराम वैराग्यके आवेशमें आ गये। वे एकाहार करते और वह भी केवल फल। महाराज दशरथ, सभी माताएँ तथा भाई और अयोध्यानिवासी चिन्तित थे। महर्षि वसिष्ठने आकर उन्हें समझाया। दूसरे दिनसे वे गुरु-आश्रम जाने लगे तथा प्रात:से सायंकालतक गुरुगृह ही रहते, वहीं आहार ग्रहण करते। नन्दिनी उनके लिये मध्याह्नमें दिव्य भोजन प्रकट करतीं। उसके प्रसादका तिरस्कार तो महर्षि भी नहीं कर पाते थे।

५-अयोध्यासे जनकपुरको बारात-प्रस्थानके समय— मंगलध्वनि, शंखनाद, स्वस्तिपाठके साथ जब महर्षि वसिष्ठ एवं महाराज दशरथने अधरोंसे शंख लगाकर प्रस्थानकी सूचना दी, बारात आगे बढ़ी। गणेश तथा आराध्यका स्मरण करके महाराजने सारथीको रथ बढ़ानेका संकेत दिया। अश्वोंने जैसे ही पद बढ़ाये, महर्षि वसिष्ठकी कामधेनु-नन्दिनी अपने बछड़ेको पिलाती सामने ही मिली। महाराजने अंजलि बाँधकर उसे प्रणाम किया और सारथिको आदेश दिया कि नन्दिनीको दाहिने करके रथ ले चलें।

६-श्रीरामके वनवासपर जाते समय— श्रीरामने वनवासपर जाते समय अपने अनुज लक्ष्मण तथा श्रीवैदेहीके साथ गुरुके आश्रममें नन्दिनीको दण्डवत् प्रणिपात किया। नन्दिनीने हुंकारकर उनका सिर सूँघा, श्रीवैदेहीके सिरपर ग्रीवा रखी। महर्षि वसिष्ठ प्रसन्न होकर बोले—'वत्स रामभद्र! यह तुम्हें महान् विजय प्राप्त करनेका और जनककुमारीको सौभाग्यवती रहनेका आशीर्वाद दे रही है।' श्रीरामने अंजलि बाँधकर नन्दिनीसे प्रार्थना की—'अम्ब! राम अयोध्याकी रक्षाका दायित्व आपपर छोड़ता है।' नन्दिनीने अपने दक्षिण-पादके खुरसे भूमि कुरेदकर गर्दन हिलाते हुए अपनी स्वीकृति दी।

७-श्रीभरतजीके श्रीरामको लौटाने वनको चले जानेपर— श्रीभरतके साथ जाते हुए महर्षि वसिष्ठ अपनी नन्दिनीके सम्मुख दण्डवत् करके हाथ जोड़कर खड़े हो गये—'नन्दिनी! तुम सर्वसमर्थ हो। अयोध्यानगर, राज्य, प्रजा, कोष एवं गृहोंकी रक्षाका दायित्व तुमपर है। जबतक श्रीराम वनसे लौट नहीं आते, वह रक्षाका भार तुम स्वीकार कर लो।' नन्दिनीने हुंकार की और दो पद आगे आकर उसने महर्षिके करोंको सूँघकर अपनी स्वीकृति दी।

८-श्रीभरतजीके नन्दिग्राममें निवासके समय— भरतजी श्रीरामके आग्रहसे अयोध्या लौट आये और वे नन्दिग्राममें तपस्वी बन गये। उन्होंने अपने भाई शत्रुघ्नसे सस्नेह कहा—'भैया शत्रुघ्न! अपने कुलगुरुने साम्राज्यकी सुरक्षाका दायित्व चौदह वर्षके लिये अपनी कामधेनुनन्दिनी नन्दिनीको सौंपकर हम दोनोंको उन्होंने निश्चिन्त ही कर दिया है।'

महर्षि वसिष्ठ स्वयं अपने हाथोंसे नित्य गोसेवा करते थे। वे गोतत्त्ववेत्ताओंके आद्य आचार्य थे। उन्होंने महाभारत (अनु० ८३।५२)-में राजा सौदाससे गोमहिमाका वर्णन करते हुए अन्तमें साररूपमें यही कहा है—'**न किञ्चिद् दुर्लभं चैव गवां भक्तस्य भारत।**' (अर्थात् हे भरतवंशी राजन्! गोभक्तके लिये यहाँ कुछ भी दुर्लभ नहीं है।) गो तथा गोसेवा उनका सर्वस्व तथा जीवन था। नन्दिनी उनकी सदैव वन्दनीय रहीं। ऐसी सर्वमंगला करुणामयी नन्दिनीको सहस्र कोटि वन्दन!

व्रतोत्सव-पर्व

सं० २०७४, शक १९३९, सन् २०१७, सूर्य दक्षिणायन, वर्षा-ऋतु, आश्विन कृष्णपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा दिनमें ११। ४६ बजेतक	गुरु	पू०भा० दिनमें २। २ बजेतक	७ सितम्बर	**मीनराशि** प्रात: ७। ५७ बजेतक, **द्वितीयाश्राद्ध।**
द्वितीया ,, १०। ५७ बजेतक	शुक्र	उ० भा० ,, १। ५२ बजेतक	८ ,,	**भद्रा** रात्रिमें १०। २० बजेसे, **तृतीयाश्राद्ध, मूल** दिनमें १। ५२ बजेसे।
तृतीया ,, ९। ४३ बजेतक	शनि	रेवती ,, १। १५ बजेतक	९ ,,	**भद्रा** दिनमें ९। ४३ बजेतक, **मेषराशि** दिनमें १। १५ बजेतक, **पंचक समाप्त** दिनमें १। १५ बजे, **संकष्टी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, चन्द्रोदय** रात्रिमें ८। २५ बजे, **चतुर्थीश्राद्ध।**
चतुर्थी ,, ८। ६ बजेतक	रवि	अश्विनी ,, १२। २० बजेतक	१० ,,	**पंचमीश्राद्ध, मूल** दिनमें १२। २० बजेतक।
पंचमी प्रात: ६। १० बजेतक	सोम	भरणी ,, ११। ५ बजेतक	११ ,,	**भद्रा** रात्रिमें ४। ० बजेसे, **वृषराशि** सायं ४। ४३ बजेसे, **षष्ठीश्राद्ध।**
सप्तमी रात्रिमें १। ३९ बजेतक	मंगल	कृत्तिका ,, ९। ३८ बजेतक	१२ ,,	**भद्रा** दिनमें २। ४९ बजेतक, **सप्तमीश्राद्ध।**
अष्टमी ,, ११। १२ बजेतक	बुध	रोहिणी ,, ८। १ बजेतक	१३ ,,	**मिथुनराशि** रात्रिमें ७। १० बजेसे, जीवत्पुत्रिकाव्रत, **अष्टमीश्राद्ध।**
नवमी ,, ८। ४७ बजेतक	गुरु	मृगशिरा प्रात: ६। २० बजेतक	१४ ,,	**मातृनवमी, नवमीश्राद्ध।**
दशमी ,, ६। २५ बजेतक	शुक्र	पुनर्वसु रात्रिमें ३। ८ बजेतक	१५ ,,	**भद्रा** प्रात: ७। ३६ बजेसे रात्रिमें ६। २५ बजेतक, **कर्कराशि** रात्रिमें ९। ३१ बजेसे, **दशमीश्राद्ध।**
एकादशी सायं ४। १३ बजेतक	शनि	पुष्य ,, १। ४६ बजेतक	१६ ,,	**इन्दिरा एकादशीव्रत (सबका), एकादशीश्राद्ध, मूल** रात्रिमें १। ४६ बजेसे।
द्वादशी दिनमें २। १३ बजेतक	रवि	आश्लेषा ,, १२। ३९ बजेतक	१७ ,,	**प्रदोषव्रत, द्वादशीश्राद्ध, कन्या-संक्रान्ति** दिनमें ३। ४१ बजे।
त्रयोदशी ,, १२। ३३ बजेतक	सोम	मघा ,, ११। ५४ बजेतक	१८ ,,	**भद्रा** दिनमें १२। ३३ बजेसे रात्रिमें ११। ५३ बजेतक, **त्रयोदशीश्राद्ध, मूल** रात्रिमें ११। ५४ बजेतक।
चतुर्दशी ,, ११। १५ बजेतक	मंगल	पू०फा० ,, ११। ३१ बजेतक	१९ ,,	**कन्याराशि** रात्रिशेष ५। ३२ बजेसे, **पितृविसर्जन, अमावस्याश्राद्ध, महालया समाप्त।**
अमावस्या ,, १०। २२ बजेतक	बुध	उ०फा० ,, ११। ३५ बजेतक	२० ,,	**अमावस्या।**

सं० २०७४, शक १९३९, सन् २०१७, सूर्य दक्षिणायन, वर्षा-ऋतु, आश्विन शुक्लपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा दिनमें ९। ५८ बजेतक	गुरु	हस्त रात्रिमें १२। ८ बजेतक	२१ सितम्बर	**शारदीय नवरात्रारम्भ।**
द्वितीया ,, १०। ६ बजेतक	शुक्र	चित्रा ,, १। १३ बजेतक	२२ ,,	**तुलाराशि** दिनमें १२। ४० बजेसे।
तृतीया ,, १०। ४६ बजेतक	शनि	स्वाती रात्रिमें २। ४६ बजेतक	२३ ,,	**भद्रा** रात्रिमें ११। १८ बजेसे, **वैनायकी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत।**
चतुर्थी ,, ११। ५२ बजेतक	रवि	विशाखा रात्रिशेष ४। ४४ बजेतक	२४ ,,	**भद्रा** दिनमें ११। ५२ बजेतक, **वृश्चिकराशि** रात्रिमें १०। १५ बजेसे।
पंचमी ,, १। २६ बजेतक	सोम	अनुराधा अहोरात्र	२५ ,,	× × ×
षष्ठी ,, ३। १९ बजेतक	मंगल	अनुराधा प्रात: ७। ६ बजेतक	२६ ,,	**मूल** प्रात: ७। ६ बजेसे।
सप्तमी सायं ५। ५२ बजेतक	बुध	ज्येष्ठा दिनमें ९। ४० बजेतक	२७ ,,	**भद्रा** सायं ५। २२ बजेसे, **धनुराशि** दिनमें ९। ४० बजेसे, **महानिशापूजा, हस्तनक्षत्र**का सूर्य रात्रिमें ८। ५८ बजे।
अष्टमी रात्रिमें ७। २७ बजेतक	गुरु	मूल ,, १२। १७ बजेतक	२८ ,,	भद्रा प्रा० ६। २४ बजेतक, **श्रीदुर्गाष्टमीव्रत, मूल** दिनमें १२। १७ बजेतक।
नवमी ,, ९। २३ बजेतक	शुक्र	पू०षा० ,, २। ४८ बजेतक	२९ ,,	**मकरराशि** रात्रिमें ९। २९ बजेसे, **श्रीदुर्गानवमी।**
दशमी ,, १०। ० बजेतक	शनि	उ० षा० सायं ५। ३० बजेतक	३० ,,	**विजयादशमी।**
एकादशी ,, १२। १२ बजेतक	रवि	श्रवण रात्रिमें ६। ५६ बजेतक	१ अक्टूबर	**भद्रा** दिनमें ११। ३६ बजेसे रात्रिमें १२। १२ बजेतक।
द्वादशी ,, १२। ५९ बजेतक	सोम	धनिष्ठा ,, ८। ४४ बजेतक	२ ,,	**कुंभराशि** प्रात: ७। ५० बजेसे, **पंचकारम्भ** प्रात: ७। ५० बजे।
त्रयोदशी ,, १। १२ बजेतक	मंगल	शतभिषा ,, ९। १९ बजेतक	३ ,,	**भौमप्रदोषव्रत।**
चतुर्दशी ,, १२। ५५ बजेतक	बुध	पू० भा० ,, ९। ४५ बजेतक	४ ,,	**भद्रा** रात्रिमें १२। ५५ बजेसे, **मीनराशि** दिनमें ३। ३८ बजेसे।
पूर्णिमा ,, १२। ८ बजेतक	गुरु	उ०भा० दिनमें ९। ४२ बजेतक	५ ,,	**भद्रा** दिनमें १२। ३० बजेतक, **पूर्णिमा, शरत्पूर्णिमा, मूल** रात्रिमें ९। ४२ बजेसे।

साधनोपयोगी पत्र

(१)

भगवान्‌की कृपाशक्ति

प्रिय महोदय! सप्रेम हरिस्मरण। एक पत्रमें आपने इस आशयकी बात लिखी थी कि किसी समय मेरे किसी संकल्पसे आपके मनमें बार-बार उठनेवाली एक बुरी वासना शान्त हो गयी थी, इसलिये अब मैं पुनः ऐसा संकल्प करूँ, जिससे आपकी कोई दूसरी वासना भी शान्त हो जाय। इसपर मेरा यह निवेदन है कि यदि उस बार ऐसा हुआ तो इसमें प्रधान कारण भगवत्-कृपा और आपकी श्रद्धा है, मेरे संकल्पोंमें मुझे ऐसी कोई शक्ति नहीं दीखती, जिसके बलपर मैं कुछ कर सकता हूँ, ऐसा कह सकूँ। हाँ, आपके मनसे बुरी वासना नाश हो जाय—यह मैं भी चाहता हूँ। आप भगवत्-कृपापर विश्वास करें और श्रद्धापूर्वक ऐसा निश्चय करें कि 'भगवान्‌की दयासे अब मेरे मनमें अमुक बुरी वासना कभी न उठे।' तो मेरा विश्वास है कि यदि आपका निश्चय दृढ़ श्रद्धायुक्त होगा तो आपके मनसे उक्त बुरी वासना हट सकती है। श्रीभगवान्‌की शक्ति अपरिमित है, जो मनुष्य अपनेको भगवान्‌पर सर्वतोभावेन छोड़ देता है, अपना सारा बल भगवान्‌के चरणोंमें न्योछावरकर भगवान्‌के बलका आश्रय कर लेता है, तो भगवान्‌की अचिन्त्य महिमामयी कृपाशक्तिके द्वारा सुरक्षित होकर वह समस्त विरोधी शक्तियोंपर विजयी हो सकता है। निर्भरता अवश्य ही सत्य, पूर्ण, और अनन्य होनी चाहिये। फिर उसे कुछ भी चिन्ता नहीं करनी पड़ती।

सत्यका स्वरूप और उसका महत्त्व—सत्यका महत्त्व समझमें आ जानेके बाद जरा-सा भी सत्यका अपलाप बहुत ही असत्य मालूम होता है। सत्यके द्वारा प्राप्त होनेवाले अतुलनीय आनन्द और शान्तिका आस्वादन नहीं होता, तभीतक असत्यकी ओर प्रवृत्ति होती है। श्रीभगवान्‌में पूर्ण विश्वास होनेपर भी असत्य छूट जाता है। आसक्ति, मोह और प्रमादवश ही मनुष्य झूठ बोलता है और उसके द्वारा सफलताकी सम्भावना मानता है। मनोरंजनके लिये झूठ बोलना प्रमाद है। स्वभाव बिगड़ जानेपर असत्य छूटना अवश्य ही कठिन हो जाता है। परंतु यह नहीं मानना चाहिये कि वह छूट ही नहीं सकता। वास्तवमें आत्मा सत्-स्वरूप है, आत्माका स्वरूप ही सत्य है। अतएव असत्य आत्माका स्वभाव नहीं है। भूलसे इस दोषको आत्माका स्वरूप मान लिया जाता है। जो बाहरसे आयी हुई चीज है, उसको निकालना असम्भव कदापि नहीं है। पुरानी होनेकी वजहसे कठिन अवश्य है। भगवान्‌की कृपापर भरोसा करके दृढ़तापूर्वक पुराने अभ्यासके विरुद्ध नया अभ्यास किया जाय और बीचमें ही घबड़ाकर छोड़ न दिया जाय, असत्यका पुराना अभ्यास निश्चय ही छूट जा सकता है। इस बातपर अवश्य विश्वास करना चाहिये। दुर्गुण और दुर्भाव, आत्मा या अन्तःकरणके धर्म नहीं हैं, स्वाभाविक नहीं हैं। अतएव इनको नष्ट करना, यथायोग्य परिश्रमसाध्य होनेपर भी सर्वथा सम्भव है।

यहाँ एक बात यह सत्यके सम्बन्धमें जान लेनी चाहिये कि सत्य वही है, जिसमें किसी प्रकारका कपट न हो और जो निर्दोष प्राणीका अहित न करता हो। मानो सत्यके साथ सरलता और अहिंसाका प्राण और जीवनका-सा मेल है। इनका परस्पर अविनाभाव सम्बन्ध है। वाणीसे शब्दोंका उच्चारण ज्यों-का-त्यों होनेपर भी यदि कपटयुक्त भावभंगीके द्वारा सुननेवालेकी समझमें यथार्थ बात नहीं आती तो वह वाणी सत्य नहीं है। इसके विपरीत शब्दोंके उच्चारणमें एक-एक अक्षरकी या वाक्यकी यथार्थता न होनेपर भी यदि सुननेवालेको ठीक समझा देनेकी नीयत, इशारों या भावोंका प्रयोग करके उसे यथार्थ समझा देनेकी सरल चेष्टा होती है तो वह सत्य है। उच्चारणमें वाणीकी प्रधानता होनेपर भी सत्यका यथार्थ सम्बन्ध मनसे है। इसी प्रकार किसी निर्दोष जीवका अहित करनेकी इच्छा या वासनासे जो सत्य शब्दोंका उच्चारण किया जाता है, वह भी परिणाममें असत्य और अनिष्ट फलका उत्पादक होनेसे असत्यके ही समान है। मन, वचन तथा तनमें कहीं भी छल न होकर जो सरल भाषण होता है, वही अहिंसायुक्त होनेपर सत्य समझा जाता है।

क्रोधनाशके उपाय

क्रोधके नाशके प्रधान उपाय दो हैं—

१—सबमें भगवान्को देखना। २—सबकुछ भगवान्का विधान समझकर प्रत्येक प्रतिकूलतामें अनुकूलताका अनुभव करना। और भी अनेकों उपाय हैं,उनसे सावधानीके साथ काम लेना चाहिये। सर्वत्र सबमें भगवान्को देखनेका अभ्यास करना चाहिये और जिनसे व्यवहार पड़ता हो उनको भगवान्का स्वरूप समझकर पहले मन-ही-मन उन्हें प्रणाम कर लेना चाहिये। तदनन्तर यथायोग्य निर्दोष व्यवहार करना चाहिये। श्रीभगवान् हैं, यह बात याद रखनेपर व्यवहारमें निर्दोषता आप-ही-आप आ जायगी।

नरकके तीन द्वार

धनका लोभ न रखकर कर्तव्यबुद्धिसे या इससे भी उच्च भावना हो तो भगवान्की सेवाके भावसे धनोपार्जनके लिये चेष्टा करनी चाहिये। यह भाव रहेगा तो दोष नहीं आ सकेंगे। धनोपार्जनमें पापोंका प्रवेश लोभके कारण ही होता है। यह याद रखना चाहिये कि काम, क्रोध और लोभ तीनों नरकके द्वार हैं और आत्माका पतन करनेवाले हैं। श्रीभगवान्ने गीतामें स्पष्ट इस बातकी घोषणा की है, अतएव इन तीनोंसे यथासाध्य बचना चाहिये।

परधन और परस्त्रीमें विषबुद्धि

परधन और परस्त्रीमें विषबुद्धि होनी चाहिये। उन्हें जलती हुई आग या महा विषधर सर्प समझकर उनसे दूर-अतिदूर रहना चाहिये। सद्हेतुसे भी परधन या परस्त्रीमें प्रीति होनेपर गिरनेका डर रहता है; क्योंकि ये ऐसी ही वस्तुएँ हैं। जरा-सी दूषित आसक्ति उत्पन्न होते ही पतन होते देर नहीं लगती। इसीलिये साधकोंके लिये शास्त्रोंमें इनका 'स्व' होनेपर भी वर्जन ही श्रेयस्कर बतलाया गया है। 'पर' तो प्रत्यक्ष नरकानल है ही। अतएव बार-बार दोष और दुःखबुद्धि करके परस्त्री और परधनकी ओर चित्तवृत्तिको कभी जाने ही नहीं देना चाहिये।

भगवान्की दयापर विश्वास

एक बात और, वह यह कि श्रीभगवान्की दयापर विश्वास करके उनका स्मरण करते रहना चाहिये, भगवान्पर निर्भर हो जानेसे विपत्तियाँ अपने-आप ही टल जाती हैं। भगवान् कहते हैं—तुम मुझमें मन लगाये रखो, फिर मेरी कृपासे सारी बड़ी-से-बड़ी कठिनाइयोंको सहज ही लाँघ जाओगे।

मच्चित्तः सर्वदुर्गाणि मत्प्रसादात्तरिष्यसि।

(गीता)

भगवान्की इस आश्वासन-वाणीपर विश्वास करके उनपर निर्भर होनेकी चेष्टा करनी चाहिये। शेष प्रभुकृपा।

(२)

भगवान्की दयालुतापर विश्वास

सप्रेम हरिस्मरण। जबतक मनुष्य परमात्माको नहीं प्राप्त कर लेता, तबतक नित्य नये जालोंमें फँसता ही रहता है। हमलोग अनन्त जन्मोंसे यही करते आ रहे हैं। परन्तु यह नहीं मानना चाहिये कि 'उबरनेकी कोई सूरत ही नहीं है।' तुम्हें भगवान्पर श्रद्धा रखनी चाहिये कि वे उबारनेवाले हैं, उनकी शरण लेते ही सारे जाल सदाके लिये कट जाते हैं। घबड़ाइये नहीं, 'अटकी नाव' भगवत्कृपाके अनुभवरूपी अनुकूल वायुका एक झोंका लगते ही चल पड़ेगी। भगवान्की दयालुतापर विश्वास करो। जो दुःख, कष्ट और विपत्तियाँ आ रही हैं, उन्हें भगवत्कृपाका आशीर्वाद समझो और प्रत्येक कष्टके रूपमें कृष्ण-कन्हैयाके दर्शनकर उन्हें अपनी सारी सत्ता समर्पण करनेकी चेष्टा करो, कष्टोंको कृष्णरूपमें वरण करो, सिर चढ़ाओ, आलिंगन करो। परंतु उनसे छूटनेके लिये कभी भूलकर भी कुमार्गपर चलनेकी कायरताके वश मत होओ; लड़ते रहो—मनकी बुरी वृत्तियोंसे—ऐसा करोगे तो श्रीकृष्णकृपासे तुम्हारी एक दिन अवश्य विजय होगी, तुम सुखी होओगे। मैं भी चाहता हूँ तुमसे मिलना हो। परंतु संयोग ईश्वराधीन है। मेरे दिलको तुम अपने साथ समझो। तुम्हारी स्मृति मुझे बार-बार होती है। तुम हर हालतमें मेरे प्रिय हो और रहोगे। शरीर और मनसे प्रसन्न रहनेकी निरन्तर चेष्टा करते रहो। भगवान्के नामका जप सदा करते रहो और उसे उत्तरोत्तर बढ़ाओ। शेष प्रभुकृपा।

कृपानुभूति

ईश्वर रक्षा करते हैं

बात लगभग चालीस वर्ष पूर्वकी है, उस समय मेरी पोस्टिंग खेतड़ी (झुँझुनू)-में थी। खेतड़ी एक छोटा-सा कस्बा है। मेरी शुरूसे ही सुबह अकेले भ्रमणकी आदत रही है। अत: नियमानुसार मैं सुबह-सवेरे कस्बेसे बाहर अपनी मस्तीमें घूमने निकल गया। गाँवसे बाहर बिलकुल सुनसान सड़कपर मैं जा रहा था कि अचानक मैंने पीछे मुड़कर देखा कि एक श्वान मेरी ओर सीधे तेजीसे चला आ रहा है, जब वह मुझसे मात्र दस फिटकी दूरीपर रहा होगा तो अकस्मात् न जाने कैसे एवं कहाँसे एक बड़ी पूँछवाला मोर मेरे और उस श्वानके बीचोंबीच आ प्रकट हुआ। अब तो वह श्वान जो मेरी तरफ आ रहा था, अब मेरी तरफ न लपककर तेजीसे उस मोरपर क्रोधपूर्वक लपका, किंतु वह मोर बड़ी सावधानीसे उसे अपने पीछे भगाता हुआ मुझसे एक तरफ काफी दूर ले गया और तब आकाशमें उड़ गया। मैं इसे सामान्य-सी घटना समझकर अपनी ही चालसे चला जा रहा था। अत: तबतक मैं उस स्थानसे काफी आगे निकल चुका था और अपना भ्रमण-कार्य पूर्णकर गाँवमें प्रवेश कर रहा था कि कुछ लोग बहुत घबराये हुए एक आदमीको लेकर तेजीसे चिकित्सालयकी ओर जाते दिखायी दिये। मैंने यह भी देखा कि उस आदमीकी टाँगसे काफी खून निकल रहा था एवं वह जख्मी था। पूछनेपर पता लगा कि अभी-अभी एक पागल श्वानने इसपर आक्रमणकर बुरी तरह काट खाया है। फिर अचानक वे लोग मुझसे पूछने लगे कि वह श्वान तो उधर ही गया था, जिधरसे आप आ रहे हैं। क्या वह आपको दिखायी दिया था? अब मुझे श्वान और अपने बीच मोरके अचानक आ जानेकी घटनाका ध्यान आया। क्षणभरके लिये मैं स्तब्ध रह गया। फिर मैंने पूछा कि क्या वह श्वान भूरे रंगका था? तो उन्होंने बताया कि हाँ, भूरे रंगका ही था।

मैं यह जानकर बहुत चकित हुआ। उस घायल व्यक्तिके विषयमें अगले दिन पता लगाया तो पता लगा कि उसे पागल कुत्तेके काटनेसे होनेवाली बीमारी (हाइड्रोफोबिया) हो गयी थी और दूसरे ही दिन दवा एवं इन्जेक्शनके अभावमें उस व्यक्तिकी मृत्यु हो गयी। तबतक मैं काफी सोचता रहा कि वह अचानक मोर मेरे तथा उस पागल श्वानके बीच कैसे आकर उसे मुझसे काफी दूर ले गया और वापस गाँवकी दिशामें मोड़ दिया!

यह सब रहस्य मुझे आज भी इतने अरसे बाद सोचनेको मजबूर करता है और बार-बार स्मरण दिलाता है कि ईश्वर है। ऐसा लगता है मानो उस दिन मयूर-मुकुटी श्रीकृष्णने स्वयं मोरके रूपमें आकर मेरे प्राणोंकी रक्षा की और यह भी कि वे मुसीबतमें हमारी जाने कैसे-कैसे रूप बनाकर रक्षा करते हैं।

वास्तवमें बात यह है कि मेरी धर्मपत्नी बचपनसे ही श्रीकृष्णको अपना भैया मानती है तथा प्रत्येक रक्षाबन्धनके त्योहारपर उनकी पूजा करके उन्हें राखी बाँधती है। लगता है, उसीकी सच्ची पूजा तथा आस्थाने मुझे बच्चोंकी खातिर उस दिन मौतके मुखसे बचा लिया।

एक साधारण भाई भी अपनी बहन और उसके सुहागकी रक्षाके लिये हर प्रकारका प्रयास करता है तो फिर भला वे सर्वसमर्थ जगन्नियन्ता मेरी रक्षा क्यों न करते! अवश्य ही उन्होंने ही मेरी रक्षा की थी। वे सर्वसमर्थ प्रभु सबकी रक्षा करते हैं, बस, आवश्यकता है, उन्हें अपना माननेकी। आज हम दोनों परमात्माकी कृपासे सपरिवार सुखी हैं।—**ओमप्रकाश तुली**

पढ़ो, समझो और करो

(१)

तर्पण एवं पिण्डदानका महत्त्व

मैं जिला बर्दवान, पश्चिम बंगालका निवासी हूँ। हमलोग तीन भाई थे, जिसमेंसे दो भाइयोंका स्वर्गवास हो चुका है। मेरे मझले भाईकी तीन पुत्रियाँ थीं, जिनमें एककी मृत्यु सन् १९५० ई० में बहुत छोटी आयुमें हो गयी थी तथा शेष दो पुत्रियोंका अपहरणकर उनकी हत्या कर दी गयी। अपहरणकर्ताओंने उनके शव जंगलमें एक कुएँमें फेंक दिये थे। यह घटना भी दिसम्बर १९६२ की है, अत: घरके सभी सदस्य इसे प्राय: भूल चुके थे। अपने भाइयोंमें मैं सबसे छोटा था, सो दोनों पुत्रियोंका क्रिया-कर्म भी मैंने ही साधारण ढंगसे किया था। उनके सगे भाई थे, परंतु उस समय वे बहुत छोटे थे।

करीब चार-पाँच वर्ष पूर्वकी बात है। बड़े भाईके दामाद अपने पूर्वजोंका तर्पण एवं पिण्डदान करने गयाजी गये थे। जब वे तर्पण कर रहे थे तो उनको ऐसा आभास हुआ कि तीनों कन्याओंने उनसे अपने लिये भी तर्पण एवं पिण्डदान करनेका अनुरोध किया ताकि उनकी भी सद्गति और मुक्ति हो। रातमें गयाजीसे दामादजीका फोन हमारे पास आया और उन्होंने इस घटनाको बताकर तीनोंके बारेमें जानकारी ली; क्योंकि उनको उन लड़कियोंके बारेमें कुछ भी जानकारी नहीं थी। फिर मैंने उनको विस्तारपूर्वक जब पूरी बात बतायी तो उन्हें इस सम्बन्धमें ज्ञात हुआ और उन्होंने बड़ी श्रद्धाके साथ उनका पिण्डदान एवं तर्पण इत्यादि कर दिया।

मेरे इस घटनाको लिखनेका आशय यह है कि हमें मृत आत्माकी शान्तिके लिये पिण्डदान एवं तर्पण आदि अवश्य करना चाहिये। पुण्यतीर्थ और गंगा आदि पवित्र नदियोंके तटपर यह कार्य करना चाहिये। इससे मृत आत्माकी मुक्ति होती है एवं शान्ति प्राप्त होती है। पहले मेरे भी मनमें इस विषयमें कुछ-कुछ भ्रम था, परंतु इस घटनाने सभी शंकाएँ दूर कर दीं।—**पुरुषोत्तमलाल राजगड़िया**

(२)

आत्माका परकाया-प्रवेश

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय
नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णा-
न्यन्यानि संयाति नवानि देही॥

(गीता २।२२)

अर्थात् आत्मा अमर है। वह जीर्ण शरीर त्यागकर नवीन शरीर धारण करती है। ठीक उसी तरह, जैसे कि मनुष्य पुराने वस्त्र त्यागकर नवीन वस्त्र धारण करता है। ऐसा नहीं है कि व्यक्ति मरा, शरीर जला दिया या सुपुर्द-ए-खाक कर दिया और सब कुछ समाप्त। उक्त श्लोकमें आत्माको अमर बतलाया गया है। बस, वह चोलामात्र बदल देती है। इसकी पुष्टि मैं अपने ही परिवारकी एक सत्य घटनासे करना चाहूँगा, जो मृतात्माके परकाया-प्रवेश और उसकी अमरताका ज्वलन्त एवं प्रत्यक्ष प्रमाण है।

घटना ३५ वर्ष पुरानी है। २१ मई १९८२ ई० को मेरा बीसवर्षीय भतीजा चि० भूपेन्द्र समीपस्थ ग्राम निपानिया हुरहुरसे मध्याह्न लगभग बारह बजे साइकिलपर लगभग १५-२० किलो गेहूँ लेकर आ रहा था कि अचानक साइकिल एक आमकी जड़से टकरानेसे गिर गयी। उसमेंसे लगभग आधा गेहूँ पता नहीं कैसे गायब हो गये। घटना परिवारवालोंको कुछ असामान्य लगी, किंतु उस दिन बात आयी-गयी हो गयी।

उक्त घटनाके दूसरे ही दिन २२ मई १९८२ ई० को भूपेन्द्र हमारे 'छैला कुआँ' नामक कुएँपर प्रात: ८ बजे गया, वहाँ आधा-एक घण्टा बेशर्मी (बेशरम)-के पौधोंकी कुछ डालियाँ छाँटनेके बाद अचानक उसे चक्कर आने लगे और वहीं एक उल्टी भी हुई। अत: वह काम छोड़कर घर आ गया तथा हलके-से चक्कर आने और कण्ठ अवरुद्ध होनेकी शिकायत की। परिवारवालोंने नगरके एक प्राइवेट चिकित्सकको दिखाया। उन्होंने एक इंजेक्शन लगाया तथा कुछ गोलियाँ दीं। बालकने

अपनेको कुछ सहज महसूस किया।

इस प्रकार २१ से २६ मई-तक ऐसा ही कुछ चलता रहा। इन दिनोंमें एक अन्य प्राइवेट डॉक्टरको भी दिखाया गया। उन्होंने भी इंजेक्शन तथा गोलियाँ आदि दीं, किंतु स्थायी लाभ न हो सका। अतः परिवारने उसे अन्यत्र चिकित्सालय ले जानेका निर्णय लिया।

२६ मई १९८२ ई० को परिवारवाले भूपेन्द्रको शाजापुर चिकित्सालय ले जानेकी तैयारीमें लगे थे, प्राइवेट चिकित्सक महोदय भूपेन्द्रको एक-दो गोलियाँ खिलानेका प्रयास कर रहे थे कि अचानक भूपेन्द्र बोला कि 'अब मैं जा रहा हूँ, अब नहीं आऊँगा।'

इस वाक्यसे मैं तथा मेरी भाभी (भूपेन्द्रकी माता) घबरा गये कि इसका क्या तात्पर्य है कि मैं जा रहा हूँ। तभी वह अचेत होकर दो-तीन मिनट बाद पुनः होशमें आकर पलंगपर बैठकर बोला, 'काकासा! भूख लगी है, रोटी खाऊँगा।'

मैं यह सुनकर हैरान-परेशान था कि अभी तो इसके गलेमें गोली नीचे नहीं उतर रही थी और अचानक यह रोटीकी माँग कैसी? मैंने कहा—'भूपेन्द्र! आज दाल-सब्जी नहीं बची है। वह बोला, 'अचारसे ही खा लूँगा।' इतनेमें डॉक्टरने हिदायत दी कि इसके गलेमें खराश है, अतः खटाई कदापि न दें। तब भूपेन्द्रने दूधके साथ गेहूँकी दो या तीन रोटी खायी। अब मेरी समझमें सारा माजरा आ चुका था। मेरे अग्रज कथा-वार्ताहेतु बाहर गये हुए थे, अतः मैंने भाभीसे एकान्तमें कहा, 'मुझे ऐसा लगता है कि इसे कोई बीमारी नहीं है, अब डॉक्टरकी नहीं अपितु किसी अच्छे ओझा या जानकारको दिखानेकी जरूरत है।'

भाई साहबने आनेपर इस दिशामें खोजबीन शुरू की, परंतु पहले ही २७ मई १९८२ ई० को रात्रि लगभग एक बजे भूपेन्द्र पुनः थोड़ी देरके लिये असहज हुआ, कुछ बड़बड़ाया और फिर स्वतः स्वस्थ हो गया और सो गया।

अगले दिन २८ मई १९८२ ई० को प्रातः लगभग ५ बजे फिर आत्मा भूपेन्द्रके शरीरमें आयी तथा अंग्रेजीमें बोली—'It was a great accident' थोड़ी चर्चा हुई और आत्मा बिना अपना परिचय दिये यह कहकर कि 'बस, अब जायँगे' चली गयी। इसी दिन मध्याह्नमें हलकी बूँदा-बाँदी हो जानेसे मौसम सुहावना हो गया था। मैंने भाभीको सख्त हिदायत दे दी कि भूपेन्द्रपर कड़ी नजर रखना है; क्योंकि कभी भी कुछ भी घटित हो सकता है। भूपेन्द्र घरमें पलंगपर लेटा था कि मध्याह्न लगभग ३ बजे वह पलंगपरसे नीचे गिर पड़ा। गिरनेकी आवाज सुनकर मैं बदहवास दौड़ा और उसे बाहर आँगनमें लाना चाहा, लेकिन आत्मा वहीं बैठकर चर्चा करना चाहती थी, पर मैं जबर्दस्ती उसे उठाकर आँगनमें ले आया। चर्चामें आत्माने अपना परिचय दिया—मेरा नाम श्रीधर पौराणिक है, मेरी आयु ९० वर्ष है और भगवान् शंकर मेरे इष्टदेव हैं। मैं एक महात्माके वेशमें हरकी पौड़ीके पास एक छोटे-से आश्रममें रहता था। मेरे भाईके दो पुत्र थे, राम-लक्ष्मण। दोनोंको काली माँने ले लिया।

मैंने पूछा—महात्माजी! आप प्रातः ५ बजे पधारे थे, लेकिन बिना चर्चा किये तुरंत चले क्यों गये? उन्होंने बतलाया कि आपके पड़ोसमें किसीके मर जानेसे रोना-धोना चल रहा था, ऐसेमें यहाँ रुकना हमने उचित नहीं समझा। बात सही थी, पड़ोसमें रहनेवाले पटवारीकी लड़की मर गयी थी। मैंने कहा—'महन्तजी! आप अकारण इस बालकको क्यों कष्ट दे रहे हैं?' वे बोले, 'कहाँ कष्ट दे रहा हूँ। मैं तो इससे मिलने यहाँ चला आता हूँ। मैं इस बालकपर प्रसन्न हूँ।' उन्होंने कारण बतलाया कि दो वर्ष पूर्व पं० श्रीशिवचरणजी, जगदीशचन्द्र, कैलाशचन्द्र तथा यह बालक संस्कृत कॉलेजमें प्रवेशहेतु ट्रेनमें यात्रा कर रहे थे, इनसे मेरी भेंट सहयात्रीके रूपमें हुई थी। मैं कुछ अस्वस्थ था, इसलिये इस बालकने स्टेशनपर मेरे लिये ऐनासीन गोली तथा पानी लाकर दिया और मेरी खूब सेवा की। मैंने स्टेशनपर ही बच्चोंको मिठाई खिलायी और हमने एक-दूसरेसे विदाई ली। विदाईके समय शिवचरणजी मुझे लेसुड़िया ब्राह्मण तथा बालकने पीपलखाँ आनेका निमन्त्रण दिया था तथा लिखितमें बरेछा रेलवे स्टेशनसे बरगोद, बरवाड़ी, सम्मस खेड़ी होते हुए पीपलखाँतक का मार्ग सुझाया था। मैं बरेछातक ट्रेनसे तत्पश्चात् पैदल लेसुड़िया पहुँचा तो वहाँ ज्ञात हुआ कि

शिवचरणजी तो पासके ग्राम निपानिया धाकड़ यज्ञमें गये हैं। अतः वहाँ रुकना ठीक नहीं समझा और खास तो हमें इस बालकसे मिलना था। इसलिये यहाँ चला आया। मैंने कहा—'महात्माजी! हम भी पुराणिक हैं। दुर्घटनासे सद्‌गति नहीं होनेसे आपकी आत्मा भटक रही है। आप आज्ञा दें तो हम आपका गया-श्राद्धादि विधिवत् कर दें।' संतात्मा बोली—'नहीं, मेरी मुक्ति हो चुकी है। कुछ भी करनेकी आवश्यकता नहीं है।' मैंने कहा हम आपकी आरती उतारना चाहते हैं। वे बोले—'नहीं, भगवान्‌के मन्दिरमें दीपक लगा दो।' उन्होंने आगे कहा—एक्सीडेन्टके बाद अस्पतालमें मैं जब अन्तिम श्वास ले रहा था, उस समय मुझे इस बालकका स्मरण हो आया कि इस समय यदि यह होता तो मेरी सेवा जरूर करता। कहते हैं न कि ***'अंत मति सो गति।'***

यं यं वापि स्मरन्भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम्।
तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भावभावितः॥

(गीता ८।६)

अर्थात् हे कुन्तीपुत्र अर्जुन! यह मनुष्य अन्तकालमें जिस-जिस भी भावको स्मरण करता हुआ शरीरका त्याग करता है, उस-उसको ही प्राप्त होता है; क्योंकि वह सदा उसी भावसे भावित रहता है।

यहाँ मैं एक बात बहुत स्पष्ट कर देना अति आवश्यक समझता हूँ कि जिस समय उन संतकी आत्मा शरीरमें रहकर बात कर रही थी, उस समय भूपेन्द्रके किशोर चेहरेपर न केवल वृद्धावस्थाकी झलक स्पष्ट दिखायी दे रही थी अपितु वाणी भी गहन-गम्भीर थी। मैंने पूछा—महात्माजी! हरिद्वारमें मेरे अग्रजके एक परिचित महन्त बाल ब्रह्मचारी बालकदासजी महाराजका आश्रम है। क्या आप उन्हें जानते हैं? वे बोले—'बालकदासजी अब ब्रह्मचारी नहीं हैं। मैं उन्हें जानता हूँ, पर वे मुझे नहीं जानते।'

तत्पश्चात् वे बोले—'बस, अब मैं जाऊँगा, पाँच-छः वर्ष बाद आऊँगा, जब यह बालक कोई अफसर या जन-प्रतिनिधि बन जायगा। अब मैं जाऊँगा, अब नहीं आऊँगा—यह कहते हुए संतात्मा चली गयी।

संयोगसे भूपेन्द्रको वर्ष २००२ ई० में पीपलखाँके प्रथम नगर परिषद्‌का प्रथम अध्यक्ष बननेका गौरव प्राप्त हुआ। संतकी भविष्यवाणी सत्य सिद्ध हुई, लेकिन छः-सात दिन बाद संतात्माका फिर उसके शरीरमें आगमन हुआ और आनेके प्रति क्षमा माँगते हुए हमें अवगत कराया कि मैं आज यह कहनेके लिये आया हूँ कि आजसे तीन-चार दिन बाद इस बालकके साथ कोई घटना घटेगी तो आपलोग मुझपर शंका न करें, लेकिन घबरायें नहीं। ईश्वर सब रक्षा करेगा। इस दिन संतात्माने बतलाया कि उनकी कोई फोटो नहीं है। दुर्घटना नेमावर-यात्राके समय तथा मृत्यु अस्पतालमें हुई थी। इस घटनाको तब तीन वर्ष हो गये थे अर्थात् एक्सीडेन्ट अनुमानतः १९७९ ई० में हुआ होगा।

८ जून १९८२ ई० को मध्याह्न लगभग साढ़े चार बजे भूपेन्द्रकी तबियत फिर बिगड़ी, लेकिन आत्मा नहीं आयी और न ही पूर्व-जैसी कोई हरकत महसूस हुई। बस, घबराहटके साथ हाथ-पैरमें खूब ऐंठन होने लगी। एक प्राइवेट चिकित्सकको दिखाया गया। उन्होंने एक इंजेक्शन लगाया तथा गोलियाँ दीं। एक घंटेमें भूपेन्द्र पूर्ण स्वस्थ हो गया।

घटनाके कुछ माह पश्चात् हमने भूपेन्द्रसे इस बारेमें पूछा तो उसने हरिद्वारकी पूरी घटना, जो संतने बतायी थी, सुना दी।

कहते हैं, जिस व्यक्तिकी दुर्घटना अथवा आत्महत्यासे मृत्यु होती है, उसकी आत्मा उतने समयतक भटकती रहती है, जिस दिन विधाताने उसकी सहज स्वाभाविक मृत्यु लिखा है। सम्भवतः संतात्माकी घटनाके दो-तीन वर्षोंमें ही स्वाभाविक मृत्यु लिखी होनेसे उनकी मुक्ति हो गयी। इसीलिये वे फिर नहीं आये।

यह घटना सिद्ध करती है कि शरीर भस्मसात् अथवा सुपुर्द-ए-खाक होनेपर भी आत्माका अस्तित्व नष्ट नहीं होता। दुर्घटनामें संतकी मृत्युके कारण तभीसे मेरे परिवारमें प्रतिवर्ष शस्त्र-हतो (घायल चौदस) तिथिको संतात्माका श्राद्ध करते हैं।—**हरिनारायण बी० नागर**

मनन करने योग्य

मृत्युका कारण—प्राणीका अपना ही कर्म

प्राचीनकालमें एक गौतमी नामकी वृद्धा ब्राह्मणी थी। उसके एकमात्र पुत्रको एक दिन सर्पने काट लिया, जिससे वह बालक मर गया। वहाँपर अर्जुनक नामक एक व्याध इस घटनाको देख रहा था। उस व्याधने फंदेमें सर्पको बाँध लिया और उस ब्राह्मणीके पास ले आया। ब्राह्मणीसे व्याधने पूछा—'देवि! तुम्हारे पुत्रके हत्यारे इस सर्पको मैं अग्निमें डाल दूँ या काटकर टुकड़े-टुकड़े कर डालूँ?'

धर्मपरायणा गौतमी बोली—'अर्जुनक! तुम इस सर्पको छोड़ दो। इसे मार डालनेसे मेरा पुत्र तो जीवित होनेसे रहा और इसके जीवित रहनेसे मेरी कोई हानि नहीं है। व्यर्थ हत्या करके अपने सिरपर पापका भार लेना कोई बुद्धिमान् व्यक्ति स्वीकार नहीं कर सकता।'

व्याधने कहा—'देवि! वृद्ध मनुष्य स्वभावसे दयालु होते हैं, किंतु तुम्हारा यह उपदेश शोकहीन मनुष्योंके योग्य है। इस दुष्ट सर्पको मार डालनेकी तुम मुझे तत्काल आज्ञा दो।'

व्याधने बार-बार सर्पको मार डालनेका आग्रह किया; किंतु ब्राह्मणीने किसी प्रकार उसकी बात स्वीकार नहीं की। इसी समय रस्सीमें बँधा सर्प मनुष्यके स्वरमें बोला—'व्याध! मेरा तो कोई अपराध नहीं। मैं तो पराधीन हूँ, मृत्युकी प्रेरणासे मैंने बालकको काटा है।'

अर्जुनकपर सर्पकी बातका कोई प्रभाव नहीं पड़ा। वह क्रोधपूर्वक कहने लगा—'दुष्ट सर्प! तू मनुष्यकी भाषा बोल सकता है, यह जानकर मैं डरूँगा नहीं और न तुझे छोड़ूँगा। तूने चाहे स्वयं यह पाप किया या किसीके कहनेसे किया; परंतु पाप तो तूने ही किया। अपराधी तो तू ही है। अभी मैं अपने डंडेसे तेरा सिर कुचलकर तुझे मार डालूँगा।'

सर्पने अपने प्राण बचानेकी बहुत चेष्टा की। उसने व्याधको समझानेका प्रयत्न किया कि 'किसी अपराधको करनेपर भी दूत, सेवक तथा शस्त्र अपराधी नहीं माने जाते। उनको उस अपराधमें लगानेवाले ही अपराधी माने जाते है। अतः अपराधी मृत्युको मानना चाहिये।'

सर्पके यह कहनेपर वहाँ शरीरधारी मृत्यु देवता उपस्थित हो गया। उसने कहा—'सर्प! तुम मुझे क्यों अपराधी बतलाते हो? मैं तो कालके वशमें हूँ। सम्पूर्ण लोकोंके नियन्ता काल-भगवान् जैसा चाहते हैं, वैसा ही मैं करता हूँ।'

वहाँपर काल भी आ गया। उसने कहा—'व्याध! बालककी मृत्युमें न सर्पका दोष है, न मृत्युका और न मेरा ही। जीव अपने कर्मोंके ही वशमें है। अपने कर्मोंके ही अनुसार वह जन्मता है और कर्मोंके अनुसार ही मरता है। अपने कर्मके अनुसार ही वह सुख या दुःख पाता है। हमलोग तो उसके कर्मका फल ही उसको मिले, ऐसा विधान करते हैं। यह बालक अपने पूर्वजन्मके ही कर्मदोषसे अकालमें मर गया।'
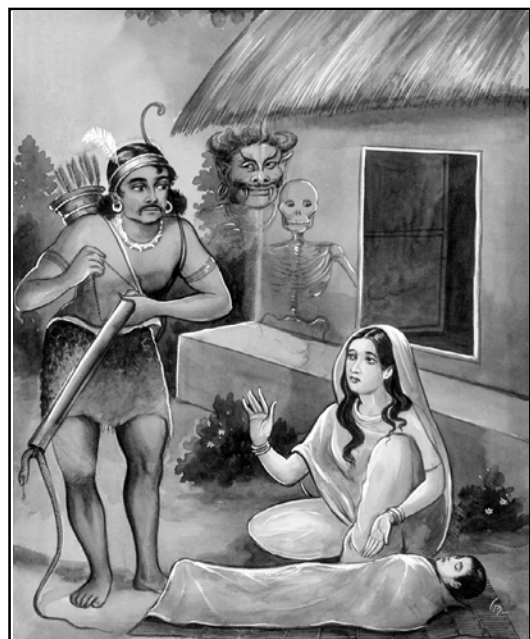
कालकी बात सुनकर ब्राह्मणी गौतमीका पुत्रशोक दूर हो गया। उसने व्याधको कहकर बन्धनमें जकड़े सर्पको भी छुड़वा दिया। **[महाभारत, अनुशासन-पर्व]**

गीताप्रेस, गोरखपुरसे प्रकाशित—श्रीदुर्गासप्तशतीके विभिन्न संस्करण

(शारदीय नवरात्र २१ सितम्बर गुरुवारसे प्रारम्भ होगा)

कोड 1346, सानुवाद, मोटा टाइप

कोड 1281, सानुवाद, विशिष्ट संस्करण

कोड 1161, केवल हिन्दी

श्रीदुर्गासप्तशती
स्थूलाक्षरैर्मुद्रिता
(मूलभागपाठविधिसहिता)

कोड 1567, मूल, मोटा

कोड	पुस्तक-नाम	मूल्य ₹
1567	**मूल,** मोटा टाइप (बेड़िआ)	४५
876	**मूल,** गुटका	१५
1346	**सानुवाद,** मोटा टाइप	३५
1281	**सानुवाद** (वि० सं०)	५५
118	**सानुवाद,** सामान्य टाइप (गुजराती, बँगला, ओड़िआ, तेलुगु भी)	३५
489	सानुवाद, सजिल्द, गुजराती भी	५०
866	**केवल हिन्दी**	२२
1161	,, ,, मोटा टाइप, सजिल्द	५५

दुर्गाचालीसा एवं विन्ध्येश्वरी-चालीसा (अनेक आकार-प्रकारमें)

देवीस्तोत्ररत्नाकर (कोड 1774) पुस्तकाकार—इस पुस्तकमें भगवती महाशक्तिके उपासकोंके लिये देवीके अनेक स्वरूपोंके उपासनार्थ चुने हुए विभिन्न स्तोत्रोंका अनुपम संकलन किया गया है। मूल्य ₹ ३५

नवरात्रके अवसरपर नित्य पाठके लिये 'श्रीरामचरितमानस' के विभिन्न संस्करण

कोड	पुस्तक-नाम	मूल्य ₹	कोड	पुस्तक-नाम	मूल्य ₹
1389	**श्रीरामचरितमानस**—बृहदाकार (वि०सं०)	६५०	82	**श्रीरामचरितमानस**—मझला साइज, सटीक, [बँगला, गुजराती, अंग्रेजी भी]	१३०
80	,, बृहदाकार-सटीक (सामान्य संस्करण)	५५०			
1095	,, ग्रन्थाकार-सटीक (वि०सं०) गुजरातीमें भी	३३०	1617	,, मझला, रोमन एवं अंग्रेजी-अनुवादसहित	१३०
81	,, ग्रन्थाकार-सटीक, सचित्र, मोटा टाइप, [ओड़िआ, तेलुगु, मराठी, गुजराती, कन्नड, अंग्रेजी भी]	२६०	83	,, मूलपाठ, ग्रन्थाकार [गुजराती, ओड़िआ भी]	१२०
			84	,, मूल, मझला साइज [गुजराती भी]	८०
1402	,, सटीक, ग्रन्थाकार (सामान्य संस्करण)	१९०	85	,, मूल, गुटका [गुजरातीमें भी]	५०
1563	,, मझला, सटीक (विशिष्ट संस्करण)	१४०	1544	,, मूल गुटका (विशिष्ट संस्करण)	५०
1436	,, मूलपाठ, बृहदाकार	२५०	1349	,, सुन्दरकाण्ड सटीक, मोटा टाइप, दो रंगोंमें	२५

गीता-दैनन्दिनी—गीता-प्रचारका एक साधन

(प्रकाशनका मुख्य उद्देश्य—नित्य गीता-पाठ एवं मनन करनेकी प्रेरणा देना।)

व्यापारिक संस्थान दीपावली/नववर्षमें इसे उपहारस्वरूप वितरित कर गीता-प्रसारमें सहयोग दे सकते हैं।

गीता-दैनन्दिनी (सन् २०१८)-की सितम्बर/अक्टूबर माहमें उपलब्धि सम्भावित।

पूर्वकी भाँति सभी संस्करणोंमें सुन्दर बाइंडिंग तथा सम्पूर्ण गीताका मूल-पाठ, बहुरंगे उपासनायोग्य चित्र, प्रार्थना, कल्याणकारी लेख, वर्षभरके व्रत-त्योहार, विवाह-मुहूर्त, तिथि, वार, संक्षिप्त पञ्चाङ्ग, रूलदार पृष्ठ आदि।

पुस्तकाकार—विशिष्ट संस्करण (**कोड 1431**)—संस्कृत मूल हिन्दी अनुवाद, **बँगला** अनुवाद, (**कोड 1489**), **ओड़िआ** अनुवाद, (**कोड 1644**), **तेलुगु** अनुवाद, (**कोड 1714**); प्रत्येकका मूल्य ₹ ७५

सुन्दर प्लास्टिक आवरण (**कोड 503**)—गीताके मूल श्लोक एवं सूक्तियाँ मूल्य ₹ ६०

पॉकेट साइज— सुन्दर प्लास्टिक आवरण (**कोड 506**)— गीताके मूल श्लोक मूल्य ₹ ३५

प्र० ति० २१-८-२०१७
रजि० समाचारपत्र—रजि०नं० २३०८/५७ पंजीकृत संख्या—NP/GR-13/2017-2019
LICENSED TO POST WITHOUT PRE-PAYMENT | LICENCE No. WPP/GR-03/2017-2019

जनवरी सन् २०१८ ('कल्याण' वर्ष ९२)-का विशेषाङ्क—'शिवमहापुराणाङ्क' (उत्तरार्ध)

पुराणोंमें श्रीशिवमहापुराणका महनीय स्थान है। वेद-वेदान्तमें विलसित परम तत्त्व—'परमात्मा' का इसमें 'शिव' नामसे गान किया गया है। पिछले वर्ष कल्याणके विशेषाङ्कके रूपमें श्रीशिवमहापुराणका पूर्वार्ध (विद्येश्वरसंहिता एवं रुद्रसंहिता) श्लोकसंख्यासहित हिन्दीभाषानुवादके साथ प्रकाशित किया गया था। इसका उत्तरार्ध भाग (शतरुद्रसंहितासे वायवीयसंहितातक) कल्याणके ९२वें वर्षके विशेषाङ्करूपमें प्रकाशित किया जा रहा है।

इसकी शतरुद्रसंहितामें भगवान् शिवके विभिन्न अवतारोंकी कथा, नन्दीश्वरके जन्मकी कथा तथा कालभैरव-माहात्म्यका वर्णन है। कोटिरुद्रसंहितामें भगवान् शंकरके द्वादश ज्योतिर्लिङ्गों तथा उनके उपलिङ्गोंके प्राकट्यकी कथा एवं उनके दर्शन-पूजनकी महिमाका वर्णन है। तदनन्तर इसी संहितामें भगवान् शंकरद्वारा विष्णुको सुदर्शन चक्र प्रदान करनेकी कथा, परमकल्याणकारी शिवसहस्रनाम, शिवरात्रिव्रतकी कथा-विधि एवं महिमाका वर्णन है। उमासंहिताके प्रारम्भमें भगवान् श्रीकृष्णद्वारा तप करने और शिव-पार्वतीसे वरदानप्राप्तिकी कथा है। तत्पश्चात् भगवती उमाद्वारा विभिन्न अवतार लेकर मधु-कैटभ, धूम्रलोचन, चण्ड-मुण्ड, रक्तबीज, शुंभ-निशुंभ, दुर्गमासुर आदिके वधकी कथा है। कैलाससंहितामें प्रणवके वाच्यार्थ, संन्यासग्रहणकी शास्त्रीय विधि, शैवदर्शनके अनुसार शिवतत्त्व और जीवतत्त्वका विशद वर्णन है। वायवीय-संहिता पूर्वखण्डमें पुराणोंका परिचय, ब्रह्माजीद्वारा परम पुरुष रुद्रकी महिमाका प्रतिपादन, अर्धनारीश्वरस्तोत्र, शैवागम, पाशुपतव्रत और उपमन्युपर शिवकृपाका वर्णन है। इसके उत्तरखण्डमें उपमन्युद्वारा श्रीकृष्णको शिव और शिवाकी विभूतियों, शिवज्ञान, पंचाक्षर-मन्त्रके माहात्म्य, शैवी दीक्षा, पंचमुख महादेवकी आवरण पूजा और महास्तोत्र, योगके भेद, शिवयोगीके महत्त्व आदिका उपदेश दिया गया है। इस प्रकार यह विशेषाङ्क भगवान् शिव और भगवती शिवाके लीलाचरित्रोंका अत्यन्त अद्भुत संकलन है, जो पाठकोंके लिये अत्यन्त कल्याणकारी है।

सदस्यता-शुल्क—एकवर्षीय ₹ २५०, पंचवर्षीय ₹ १२५०

पाठकोंके लिये आवश्यक सूचना

1. 'कल्याण' एवं 'गीताप्रेस-पुस्तक-बिक्री-विभाग' की व्यवस्था अलग-अलग है। अत: केवल कल्याणके लिये कल्याण विभागको एवं पुस्तकोंके लिये पुस्तक-बिक्री-विभागको पत्र तथा मनीऑर्डर आदि अलग-अलग भेजना चाहिये। पुस्तकोंके ऑर्डर, डिस्पैच अथवा मूल्य आदिकी जानकारीके लिये पुस्तक प्रचार-विभागके फोन (0551) 2331250, 2334721 नम्बरोंपर सम्पर्क करें।

2. कल्याणके पाठकोंकी शिकायतोंके शीघ्र समाधानके लिये कल्याण-कार्यालयमें दो फोन 09235400242/ 09235400244 उपलब्ध हैं। इन नम्बरोंपर प्रत्येक कार्य-दिवसमें दिनमें 9 बजेसे 12 बजेतक एवं 1.30 बजेसे 4.30 बजेतक सम्पर्क कर सकते हैं अथवा kalyan@gitapress.org पर e-mail भेज सकते हैं। इसके अतिरिक्त नं० 9648916010 पर SMS एवं WatsApp की सुविधा भी उपलब्ध है।

3. कल्याणके सदस्योंको मासिक अङ्क साधारण डाकसे भेजे जाते हैं। अङ्कोंके न मिलनेकी शिकायतें बहुत अधिक आने लगी हैं। सदस्योंको मासिक अङ्क भी निश्चित रूपसे उपलब्ध हो, इसके लिये सन् २०१८ के लिये **वार्षिक सदस्यता-शुल्क ₹ २५० के अतिरिक्त ₹ २०० देनेपर मासिक अङ्कोंको भी रजिस्टर्ड डाकसे भेजनेकी व्यवस्था की गयी है।**

4. कल्याणके मासिक अङ्क kalyan-gitapress.org पर नि:शुल्क पढ़ सकते हैं।

व्यवस्थापक—'कल्याण-कार्यालय', पो०-गीताप्रेस, गोरखपुर—२७३००५ (उ०प्र०)